ISSN 2454-504X | 01-15 मई, 2025 | राष्ट्रीय पाक्षिक पत्रिका | RNI No. DELHIN/2002/08663 | ₹ 15

दूसरा मत

दूसरा मत कामयाबी के 22 साल

www.doosramat.com | YOUTUBE DOOSRA MAT | जहां सच बोलते हैं शब्द

ख़ून का बदला पानी !

'दूसरा मत' प्रकाशन

'आमने-सामने' अपने-आप में एक ऐतिहासिक इंटरव्यू-संग्रह है। इस संग्रह में देश की 62 अहम शख़्सियतों एवं हस्तियों के साक्षात्कार शामिल हैं। यह संग्रह देश ही नहीं विदेशों में भी खासा चर्चित रहा है।

देश के जाने-माने प्रकाशन 'राजपाल' के प्रकाशक एवं डीएवी मैनेजमेंट कमिटी के वायस प्रेसिडेंट विश्वनाथ जी ने अपने पत्र में स्पष्ट लिखा है, -"इस तरह के विशाल इंटरव्यू-संग्रह देश ही नहीं बल्कि विदेशों में भी अभी तक नहीं आए हैं।

आमने-सामने (मूल्य 750/)

'सामना' भी एक महत्वपूर्ण इंटरव्यू-संग्रह के तौर पर 'आमने-सामने' की तरह सामने आया है। इसे भी शख़्सियतों एवं साक्षात्कार की कला को कुबूल करने वाले लोगों ने हाथों-हाथ लिया है। इस संग्रह में देश की विभिन्न क्षेत्रों की 82 हस्तियों की इंटरव्यू की शक्ल में लेखा-जोखा एवं उनकी हस्ती की पड़ताल है।

अपने-अपने क्षेत्र में मील का पत्थर साबित होने वाले और देश व दुनिया के सामने अपना लोहा मनवाने वाले लोगों के एक समूह विशेष इस अंक में शामिल हैं।

सामना (मूल्य 1100/)

दूसरा मत

पढ़ें और पढ़ाएं, और पढ़ाएं

एक शुभचिंतक, दिल्ली

दूसरा मत वार्षिक सदस्यता

व्यक्तिगत एक वर्ष स्पीड पोस्ट सहित 2500 रुपए

संस्थागत एक वर्ष स्पीड पोस्ट सहित 5000 रुपए

पीडीएफ प्रतिवर्ष 500 रुपए

दूसरा मत
जहां सच बोलते हैं शब्द

RNI No. DELHIN/2002/08663

वर्ष: 24, अंक: 09

01-15 मई, 2025

संपादक
ए आर आज़ाद

संपादकीय सलाहकार
मन्त्रेश्वर झा (IAS R.)
(पूर्व प्रमुख सलाहकार, योजना आयोग, भारत सरकार)

प्रमुख परामर्शी एवं प्रमुख क़ानूनी सलाहकार
न्यायमूर्ति राजेन्द्र प्रसाद
(अवकाश प्राप्त न्यायधीश, पटना उच्च न्यायालय)

प्रमुख सलाहकार
जियालाल आर्य (IAS R.)
(पूर्व गृह सचिव एवं पूर्व चुनाव आयुक्त बिहार)

ब्यूरो प्रमुख
रुफी शमा

राजनीतिक संपादक
देवेंद्र कुमार प्रभात

बेगूसराय ब्यूरोचीफ सह ब्यूरो बिहार
एस आर आज़मी

ब्यूरो ऑफिस बिहार
बजरंगबली कॉलोनी, नहर रोड,
जज साहब के मकान के सामने, फुलवारी शरीफ,
पटना, बिहार-801505

संपादकीय एवं पंजीकृत कार्यालय
81-बी, सैनिक विहार, फेज़-2, मोहन गार्डेन,
उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059
Email: doosramat@gmail.com
MOBILE. 9810757843
Whatsapp. 9643709089

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक
ए आर आज़ाद द्वारा 81-बी, सैनिक विहार, फेज़-2, मोहन गार्डेन, उत्तम नगर, नयी दिल्ली-110059 से प्रकाशित एवं शालीमार ऑफसेट प्रेस, 2622, कूचा चेलान, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित।
संपादक-ए आर आज़ाद

पत्रिका में छपे सभी लेख, लेखकों के निजी विचार हैं, इनसे संपादक या प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं। पत्रिका में छपे लेखों के प्रति संपादक की जवाबदेही नहीं होगी।
सभी विवादों का समाधान दिल्ली की हद में आने वाली सक्षम अदालतों में ही होगा।
**उपरोक्त कुछ पद अवैतनिक हैं।*

आईना 10
प्रतिबद्धता हो शासन की

विमर्श 14
पंच परिवर्तन के निहितार्थ

विवाद
हक़ में नया वक़्फ़ संशोदन 24

चलन 28
फ़ैशन का बदलता ट्रेंड

मज़दूर 30
मज़दूर और मज़दूर दिवस

ख़ूबसूरती 32
सौंदर्य या छलावा या और कुछ

विमोचन 52
शिशिरेड सेइ दिन का विमोचन

चर्चा : समय की मांग चुनाव सुधार 12
प्रसंगवश : मुक़ाबले में बने रहने का मंथन 24
नज़रिया : सशक्त पंचायतों से ही... 48
तफ़्तीश : अलगाव दूर करने में भाषा 52
पहल : एयर टैक्सी मतलब जाम से... 60
दृष्टिकोण : विक्लांग होते पुस्तकालय 70
ज़ायक़ा : जल्दी नहीं होगा खट्टा दही 74

ख़ून का बदला पानी !

भारत एक शांतिप्रिय देश के तौर पर जाना जाता है। लेकिन एक ठहरा हुआ आतंकवाद फिर से फन फैलाकर एक साथ तक़रीबन 26 लोगों को डस कर, इसे हिन्दू-मुस्लिम का रंग दे दिया। इस घटना को हमारी सरकार ने पूरी तरह पाकिस्तान प्रायोजित बताया। और उसका पानी बंद कर दिया। ज़ाहिर सी बात है कि देश की जनता इस मर्माहत और दुख की घड़ी में सरकार के साथ खड़ी है। यह उसके देशप्रेम की एक निशानी है। देश की पूरी जनता देशप्रिय और देशप्रेमी हैं। हिन्दुस्तान की मिट्टी में ही देशप्रेम का बीज स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित, पल्लवित और पुष्पित है।

इस विशाल देश में विविधता के बावजूद, जो एकता है, उसे पाकिस्तान क्या अमेरिका भी खंडित नहीं कर सकता है। चीन अपने आपको जितना भी तुर्रम ख़ां समझ ले, लेकिन वह भारत की सुदूर सीमा की ज़मीनों को हड़पने के अलावा और कुछ नहीं कर सकता है। भारत की सामरिक शक्ति जितनी भी, हो, लेकिन आत्मीयता और आत्म-बल से इतनी शक्तिशाली है कि वह दुनिया का सिरमौर बन सकता है। भारत के पास खनिज प्रचुर मात्रा में है। खनिज से भी ज़्यादा यहां के लोगों में देशप्रेम की भावना दबी हुई है। भारत के खजाने में खनीज पदार्थों के साथ एकता, सौहार्द और देशप्रेम भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यही वजह है कि हमने इसी विविधतापूर्ण रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज़, चलन, पोशाक और आस्था के बावजूद गोरे को भारत से भागने पर विवश किया। देश की आज़ादी को अगर सही तरीक़े से याद किया जाए, तो फिर देश में आतंकवाद की जड़ को भी नेस्तनाबूद किया जा सकता है।

ए आर आज़ाद

हमारे मौजूदा लीडर की सोच संकीर्ण दायरे में इतना सिमटा हुआ है कि उसे अपने दो भाइयों के बीच सुलह कराने की फ़ुरसत ही नहीं है। हिन्दू-मुसलमान इस देश की थाती हैं। इन दोनों की लड़ाई सिर्फ़ और सिर्फ़ राजनीतिक है। वे कौन से दल हैं, जो इन दोनों के बीच सुलह के लिए प्रतिबद्धता दर्शाते हैं? या योजनाबद्ध तरीक़े से देश में अमन व अमान क़ायम करने के लिए आगे आते हैं?

सियासत की हमारी मानसिकता बड़ी घिनौनी होती जा रही है। सियासत की सोच की पेंदी में ही जंग लगा हुआ है। इसी लिए हमेशा सियासत दो मज़हबों के चलन, रीति-रिवाज़ और आस्था को लेकर दोनों के बीच एक खाई गहरी करने की साज़िश रचती रहती है। इस साज़िश में दोनों ओर से कुछ लोग शिकार हो जाते हैं। और यही चिंगारी भारत के शांतिप्रिय माहौल में आग में घी का काम कर जाती है। और देखते-देखते हिन्दू सिर्फ़ हिन्दू रह जाते हैं। और मुसलमान सिर्फ़ मुसलमान। दोनों उस वक़्त इस तरह से अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं कि उन्हें यह आभास ही नहीं रहता कि वह इसी देश की थाती हैं। देश रूपी एक ही हाथ की दो अंगुली हैं। एक अंगुली अगर देश की घायल हो गई, तो दर्द दूसरी अंगुली भी स्वतः महसूस करेगी ना!

दरअसल आतंकवाद का सफ़ाया पूरी तरह से राजनीतिक इच्छाशक्ति पर निर्भर है। आतंकवाद को अगर कहीं छेद मिलेगा, तो वह भारत की एकता और सौहार्द की कश्ती को तो डूबोएगा ही। राजनीतिक संकल्प आतंकवाद का समूल नाश कर सकता है। लेकिन सवाल यह है कि हाथी के दांत खाने के कुछ और दिखाने के कुछ और हैं। इसलिए जब तक विपक्ष और सरकार अपना-अपना व्यक्तिगत स्वार्थ और ख़ुदगर्ज़ी की सियासत करती रहेगी, वतन का लहू, बेकसूर का लहू इसी तरह बहता रहेगा। लेकिन इसे हर हाल में रोकना होगा।

अब समाज का काम है, सियासत की बुनियादी सच और बुनियादी झूठ को पकड़ने की कला में माहिर हो जाना। अफ़वाह की आग को अपने तक पहुंचने नहीं देना। और पहुंच जाए, तो वहीं उसे विराम दे देना। एकता और साहौर्द के तानेबाने को मज़बूती से पकड़े रहना। और यही जनता की एकता सियासत की एक नई इबारत लिखेगी। फिर आने वाले दिनों में सियासत को अपनी इबारत नए सिरे से लिखनी ही पड़ेगी।

कोई सरकार यह चाहे कि हम हिन्दू-मुसलमान करके शासन करे, तो उसे ग़ैरतमंद सरकार नहीं कहा जा सकता है। उसे बुलंद सरकार नहीं कहा जा सकता है। उसे संयमित और सही शासन संचारित सरकार नहीं कहा जा सकता है। सरकार का मतलब है बुलंद इक़बाल वाला। कोई भी सरकार अपने ही नागरिकों के बीच खलनायक की भूमिका में हो, और अपने शासन को नायक के तौर पर पेश करने की कोशिश करे, तो उसके इस यत्न का पर्दाफ़ाश होना ही है। इसलिए सरकार को अपने दो शहरियों के बीच सदभावना और सौहार्द का वातावरण बनाए रखने की लिए पहल भी और अपील भी करनी चाहिए। ना कि नफ़रत फैलाने के लिए और समाज में ज़हर घोलने के लिए ऐसे तथ्य पेश करने चाहिए, जिससे कि दो समाज आपस में टकराए। और उस चिंगारी से देश में आग लग जाए। वैसे भी यह कौन सी बात हुई कि ख़ून का बदला हम पानी से लें! ● जय हिन्द! जय भारत!!

जन सरोकार प्रतिबद्धता हो शासन की

गुरबचन जगत
स्तंभकार

मेरे अनुभव के मुताबिक बढ़िया शासन के लिए पैसे की जरूरत नहीं होती। इसके लिए फील्ड और मुख्यालय में प्रभावशाली और ईमानदार अधिकारियों की जरूरत होती है। ऐसे लोग होते हैं, लेकिन उन्हें अवसर नहीं दिया जाता और धीरे-धीरे शीर्ष पर बैठे लोगों की हर कही बात को मान जाने वाले अफसर उनकी आंख के तारे बन जाते हैं। वरिष्ठ अधिकारियों के खिलाफ मेरी एकमात्र शिकायत यह है कि वे खुलकर अपना अधिकार इस्तेमाल नहीं करते, काम की निगरानी नहीं करते, जितना व्यावहारिक दृष्टिकोण होना चाहिए, उतना रखते नहीं।

शासन चलाना कोई एक दिन का मामला नहीं है, न ही यह कोई क्षणिक काम है, यह कोई प्रेस कॉन्फ्रेंस नहीं है, यह कोई बहुत बड़ा विज्ञापन नहीं है, यह केवल विज्ञापनों के माध्यम से तमाम त्योहार मनाना नहीं है। यह दिन-प्रतिदिन की मेहनत है, यह दिन-रात किए जाने वाला थकाऊ काम है। इसके तहत आपको सौंपा गया काम करना है और इसे आपने उपलब्ध साधनों से पूरा करना है। यह सुनिश्चित करना कि लोगों को (जिनके कामों के लिए हम बने हैं) सुनवाई के लिए एक जगह से दूसरी जगह न भटकना पड़े। यह सुनिश्चित करना कि फाइलें बिना किसी रिश्वत के खुद-ब-खुद आगे बढ़ें। ऐसा करने की कोशिश करें और लोगों के चेहरों पर संतुष्टि पाएं (हालांकि उन्हें उनका हक देकर आप उन पर अहसान नहीं करेंगे) - हां आपने उन्हें 'न्याय और विकास' जरूर दे दिया।

वे इलाके से आपके जाने के बाद भी लंबे समय तक आपको याद रखेंगे, लेकिन अधिकांशतः आपका काम गुमनाम और दिखने में सामान्य ही होगा, जैसे किसी सुचारू मशीन के कलपुर्जे- मर्सिडीज चलाते समय उसका इंजन नहीं दिखता, लेकिन इसको चलाने या सफर का अहसास शानदार होता है। तथ्यों-नियमों के अनुसार न्याय करें और विकास परियोजनाओं को नियमानुसार समय पर पूरा करने में मदद करें। कई अवसरों पर आपकी नौकरी आपको उन परियोजनाओं या घटनाओं का हिस्सा बनने और उनमें योगदान देने का मौका देती है, जो इतिहास में दर्ज हो जाते हैं। ऐसे कई नाम हैं जो हमारी आजादी के शुरूआती सालों का हिस्सा थे : होमी जहांगीर भाभा को हमेशा ह्यभारतीय परमाणु कार्यक्रम के पितामहह्ल के रूप में याद किया जाता है, पाकिस्तान से आए लाखों शरणार्थियों के पुनर्वास का श्रेय डॉ. एमएस रंधावा (पुनर्वास महानिदेशक) को जाता है जिन्होंने आगे हरित क्रांति और चंडीगढ़ के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और फील्ड मार्शल सैम मानेकशॉ को भारतीय सशस्त्र बलों और 1971 की जीत में उनके अपार योगदान के लिए याद करते हैं। कदाचित ये स्वतंत्र भारत के इतिहास के कद्दावर उदाहरण हैं, लेकिन ये ऐसी मिसालें हैं जिन्होंने हमारे प्रारंभिक वर्षों में हमें प्रेरित किया, और वे अकेले नहीं थे। उन्हें अपने-अपने क्षेत्रों के काबिल और काफी प्रेरित अधिकारियों एवं टीम का साथ प्राप्त था। बिना कोई सुरक्षा कवच प्राप्त मेजर कुलदीप सिंह चांदपुरी के नेतृत्व में पंजाब रेजिमेंट की 23वीं बटालियन की 'ए' कंपनी ने अत्यंत भारी पाकिस्तानी हमले (दो टैंक

रेजिमेंट) के बावजूद जिस तरह रातभर डटे रहकर लोंगेवाला चौकी को बचाए रखा, उसे सदा भारतीय सशस्त्र बलों की वीरता और व्यावसायिकता के लिए याद रखा जाएगा।

जब मैं पुलिस सेवा में आया तो प्रशासनिक कार्यों में दौरे और नियमित निरीक्षण करना काम का एक अहम हिस्सा थे। तब अधिकारी बहुत छोटी टीमों के साथ काम किया करते थे और बहुत कम या लगभग नगण्य तकनीक उपलब्ध होने के बावजूद बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र का प्रशासन संभाल लिया करते थे। जिम्मेदारी स्पष्ट रूप से निर्धारित थी और जवाबदेही भी एक तय चीज थी। उस समय की प्रशासनिक व्यवस्था और अधिकारियों ने अपने मातहतों को काम करने की आजादी सुनिश्चित कर रखी थी और लोग काम करते भी थे। आज जबकि तमाम किस्म की तकनीकें और बुनियादी ढांचा मौजूद हैं, तो हालात देखकर दुख होता है। प्रशासन जोर-जबरदस्ती के दम पर नहीं 'इकबाल' (साख) के जरिए होता है... यह सूक्ति पुरानी सही लेकिन आज और भी उपयुक्त है।

बीते वक्त में अधिकारी खुद वस्तुस्थिति का जायजा लेने और जनता से प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए क्षेत्र में समय बिताते थे। नागरिक समाज के सभी स्तरों से सूचना और प्रतिक्रिया पाने वाली एक विस्तृत प्रणाली थी। ईमानदारी से कहूं तो आज सरकार के कितने सचिव या विभागाध्यक्ष अपने विभाग के अंतर्गत चल रही परियोजनाओं को देखने के लिए नियमित रूप से क्षेत्र का दौरा करते हैं? कितने डीएम/एसएसपी अपने कार्यक्षेत्र में एक महीने में दस रातें बिताते हैं या गांवों का दौरा करते हैं। इन्हीं चीजों की बदौलत हमें अपने काम में सफलता मिल पाई थी। आज अधिकारी बिना मतलब के फ्लैग मार्च और प्रेस कॉन्फ्रेंस करने लगते हैं और फोटो खिंचवाते हैं। फ्लैग मार्च कानून-व्यवस्था की स्थिति बहुत गंभीर बनने पर किए जाते हैं, न कि गैंगवार और अपराध के लिए। प्रशासन सुचारू चलाने में तमाम स्तरों पर कार्यप्रणाली पर बारीकी से नजर रखना शामिल है।

बात अपने राज्य पंजाब की करें तो, सरदार प्रताप सिंह कैरों ने 1959 में 'वेरका मिल्क प्लांट' की आधारशिला रखी, जो उत्तरी भारत में अपनी किस्म की पहली दुग्ध परियोजना थी और यह देश की सबसे सफल सहकारी दुग्ध समितियों में से एक बन गयी। इसी तरह, मार्कफेड की शुरूआत 1954 में एक मार्केटिंग सहकारी संस्था के रूप में हुई और आज इसकी बिक्री 22,000 करोड़ रुपये पार कर गई है। पंजाब ट्रैक्टर्स लिमिटेड और ह्यस्वराजह्न ब्रांड भी 1970 के दशक की गाथा है। यहां फिर से सरदार प्रताप सिंह कैरों का नाम लेना उचित होगा, जिन्हें ऐतिहासिक रूप से आधुनिक पंजाब के निमार्ता के रूप में जाना जाता है, उन्हें अपने काम में उच्चतम क्षमता युक्त और प्रतिबद्ध अधिकारीगण जैसे कि एमएस रंधावा, एनके मुखर्जी, गुरदयाल सिंह (आईजी पंजाब), एनएन वोहरा जैसे सक्षम अफसरों का साथ मिला।

मैं अतीत के ऐसे नामों की लंबी फेहरिस्त गिना सकता हूं,लेकिन सवाल यह कि पिछले तीन दशकों में कौन सी संस्था बनाई गई? सिवाय इसके जो अंतहीन रेवड़ियां और मुफ्त की सुविधाएं देकर चुनाव जीतती हो। हमारे ऊपर लाखों करोड़ का कर्ज है (यह 4 लाख करोड़ का आंकड़ा पार करने वाला है, एक ऐसा आंकड़ा जिसके लिए पिछले कुछ दशकों में बनी सभी सरकारें जिम्मेवार हैं) फिर भी हम नागरिकों पर रेवड़ियों की बारिश करना जारी रखे हुए हैं, उनपर भी जो नशे की लत में फंसे हैं और अब अगली खुराक की तलाश में हैं (जो और बड़ी होनी चाहिए)। क्या हम मुफ्त बस यात्रा, मुफ्त बिजली (हाल ही में ट्रिब्यून की एक खबर के अनुसार कुल बिजली सब्सिडी 1.25 लाख करोड़ रुपए को पार कर गई है) वहन करने की हालत में हैं, इनकी सूची बहुत लंबी है।

क्या नागरिकों की सेवा तब बेहतर नहीं होगी यदि हम और अधिक 'वेरका', पीटीएल और 'मार्कफेड' बनाएं, क्या यह ज्यादा बढ़िया नहीं होगा यदि हमारे पास एक अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा हो, जो वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय हो? या स्कूल, कॉलेज, अस्पताल जिनमें वास्तव में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और सुविधाएं हों? हम फिर से इतिहास के एक महत्वपूर्ण मोड़ पर हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और भू-राजनीति में बहुत बड़े बदलाव हो रहे हैं। साथ ही एआई, क्वांटम कंप्यूटिंग, रोबोटिक्स जैसी तकनीकें भारी उथल-पुथल मचाने को प्रवेश कर रही हैं। मानव सभ्यताओं का उतार-चढ़ाव और प्रवाह जारी रहेगा।

यह लोगों और नेतृत्व को तय करना है कि इतिहास उनके कामों को बेहतरी के वास्ते एक महत्वपूर्ण मील के पत्थर के तौर पर दर्ज करेगा या पुरानी कहावत के अनुसार... 'खंडरात बताते हैं कि इमारत कभी बुलंद थी' से। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

(लेखक मणिपुर के राज्यपाल एवं जम्मू-कश्मीर में पुलिस महानिदेशक रहे हैं।)

आठवें वेतन आयोग के गठन में विलंब

बलदेव राज भारतीय
वरिष्ठ स्तंभकार

जनवरी, 2025 में जब केंद्र सरकार ने आठवें वेतन आयोग के गठन की घोषणा की, तो देश भर के लाखों सरकारी कर्मचारियों और पेंशनभोगियों के चेहरों पर खुशी की लहर दौड़ गई। यह घोषणा उनके लिए किसी उत्सव से कम नहीं थी, क्योंकि वेतन आयोग का गठन न केवल उनकी आय को बढ़ाने का वादा करता है, बल्कि उनके जीवन स्तर को बेहतर बनाने और महंगाई के दबाव को कम करने का भी एक अवसर प्रदान करता है। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया, यह उत्साह धीरे-धीरे निराशा और बेचैनी में बदलने लगा। अप्रैल, 2025 भी आधा बीत गया, मगर अभी तक न तो वेतन आयोग के सदस्यों की नियुक्ति की गई है, न ही इसका कोई अध्यक्ष घोषित किया गया है, और न ही इस प्रक्रिया में शामिल होने के लिए जनता या विशेषज्ञों से सुझाव मांगे गए हैं। यह देरी न केवल कर्मचारियों की उम्मीदों पर खरा उतरने में बाधा बन रही है, बल्कि यह सवाल भी उठा रही है कि क्या सरकार इस महत्वपूर्ण प्रक्रिया को समय रहते पूरा कर पाएगी।

वेतन आयोग भारत में सरकारी कर्मचारियों और पेंशनभोगियों के वेतन, भत्तों और अन्य सुविधाओं की समीक्षा करने के लिए गठित किया जाता है। यह प्रक्रिया स्वतन्त्रता के बाद से नियमित रूप से चली आ रही है, जिसमें हर दस साल में एक नया वेतन आयोग गठित किया जाता है। सातवें वेतन आयोग, जिसका गठन फरवरी 2014 में हुआ था, ने अपनी सिफारिशें नवंबर 2015 तक दे दी थी। जिससे सातवां वेतन आयोग जनवरी, 2016 से अपने समय पर लागू हो गया था। अब आठवां वेतन आयोग जिसको जनवरी, 2026 से लागू किया जाना है, के गठन की घोषणा हुए भी चार महीने बीतने को हुए, परन्तु अभी तक सरकार द्वारा घोषणा के अतिरिक्त अन्य कोई कदम इस दिशा में नहीं उठाया गया। आठवां वेतन आयोग जिससे अपेक्षा की जा रही है कि वो न केवल वेतन संरचना में बदलाव लाएगा, बल्कि महंगाई, जीवन यापन की लागत और आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कर्मचारियों के लिए एक नया ढांचा तैयार करेगा।

आठवें वेतन आयोग की घोषणा के साथ ही कर्मचारी संगठनों ने इसे एक स्वर्णिम अवसर के रूप में देखा। बढ़ती महंगाई, आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की लागत ने कर्मचारियों के मासिक बजट पर भारी दबाव डाला है। विशेष रूप से मध्यम और निम्न वेतन वर्ग के कर्मचारियों के लिए यह वेतन वृद्धि किसी वरदान से कम नहीं होगी। लेकिन इस प्रक्रिया में हो रही देरी उनकी उम्मीदों पर अनिश्चितता की काली घटाओं की तरह मंडरा रही है।

आठवें वेतन आयोग के गठन में देरी के कई संभावित कारण हो सकते हैं। सबसे पहले, सरकार को इस आयोग के लिए उपयुक्त अध्यक्ष और सदस्यों का चयन करना होगा, जो न केवल अनुभवी हों, बल्कि विभिन्न हितधारकों के बीच संतुलन बनाए रखने में सक्षम हों। दूसरा, आर्थिक स्थिति भी इस देरी का एक कारण हो सकती है। भारत की अर्थव्यवस्था हाल के वर्षों में कई चुनौतियों से गुजरी है, जिसमें वैश्विक मंदी, महामारी के प्रभाव और मुद्रास्फीति शामिल हैं। वेतन आयोग की सिफारिशें लागू करने में सरकार को भारी वित्तीय बोझ उठाना पड़ता है, और संभवतः सरकार इस प्रक्रिया को शुरू करने से पहले अपनी आर्थिक स्थिति का आकलन कर रही है। तीसरा, वेतन आयोग की प्रक्रिया में समय लगना स्वाभाविक है। आयोग को न केवल वेतन संरचना की समीक्षा करनी होती है, बल्कि विभिन्न कर्मचारी संगठनों, विशेषज्ञों और अन्य हितधारकों से सुझाव लेने, डेटा विश्लेषण करने और फिर अपनी सिफारिशें तैयार करने में भी महीनों लग सकते हैं। इसके बाद सरकार को इन सिफारिशों की समीक्षा करनी होती है, जिसमें कई बार संशोधन और कटौती भी शामिल होती है। यह पूरी प्रक्रिया इतनी जटिल है कि यदि वेतन आयोग का काम समय पर शुरू न हो, तो जनवरी 2026 तक इसे लागू करना मुश्किल हो सकता है। कर्मचारी संगठनों ने इस देरी पर अपनी नाराजगी जाहिर की है। उनका कहना है कि सरकार ने घोषणा तो कर दी, लेकिन उसका कोई ठोस रोडमैप सामने नहीं आया है। कई संगठनों ने मांग की है कि सरकार जल्द से जल्द आयोग के सदस्यों की घोषणा करे और इस प्रक्रिया को पारदर्शी तरीके से शुरू करे। कर्मचारियों का यह भी कहना है कि अगर देरी और बढ़ी, तो उनकी वित्तीय स्थिति और खराब हो सकती है, क्योंकि महंगाई का दबाव लगातार बढ़ रहा है।

आठवां वेतन आयोग न केवल कर्मचारियों के लिए, बल्कि समग्र अर्थव्यवस्था के लिए भी महत्वपूर्ण है। सरकारी कर्मचारी देश की अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, और उनकी खर्च करने की क्षमता बाजार को गति देती

है। वेतन वृद्धि से न केवल उनकी क्रय शक्ति बढ़ेगी, बल्कि इससे उपभोक्ता मांग में भी वृद्धि होगी, जो अर्थव्यवस्था के लिए सकारात्मक संकेत है। इसके अलावा, वेतन आयोग का गठन कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाने और उनकी कार्यक्षमता में सुधार लाने में भी मदद करता है। यह आयोग विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत कर्मचारियों की विशिष्ट जरूरतों को भी ध्यान में रखता है। उदाहरण के लिए, रक्षा कर्मियों, रेलवे कर्मचारियों, शिक्षकों और स्वास्थ्य कर्मियों की अलग-अलग चुनौतियां होती हैं, और वेतन आयोग इन सभी पहलुओं पर विचार करता है। इसके अलावा, पेंशनभोगियों के लिए भी यह आयोग महत्वपूर्ण है, क्योंकि उनकी आय को भी महंगाई के अनुरूप समायोजित करने की आवश्यकता होती है।

यदि आठवें वेतन आयोग के गठन में और देरी होती है, तो इसके कई नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं। सबसे पहले, कर्मचारियों का सरकार के प्रति विश्वास कम हो सकता है। दूसरा, यह देरी कर्मचारियों की वित्तीय योजनाओं को प्रभावित कर सकती है, क्योंकि कई कर्मचारी इस वेतन वृद्धि के आधार पर अपने भविष्य की योजनाएं बनाते हैं। तीसरा, अगर आयोग को अपनी सिफारिशें तैयार करने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता, तो उसकी गुणवत्ता पर भी असर पड़ सकता है, जिससे कर्मचारियों को अपेक्षित लाभ नहीं मिलेगा। इसके अलावा, देरी से सरकार पर भी दबाव बढ़ेगा। यह सरकार की छवि को प्रभावित करेगा। इससे कर्मचारियों का विश्वास प्रभावित होगा जिससे उनकी कार्य के प्रति अभिरुचि पर प्रभाव पड़ सकता है।

आठवें वेतन आयोग को समय पर लागू करने के लिए सरकार को तत्काल कुछ ठोस कदम उठाने होंगे। सबसे पहले, आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति की प्रक्रिया को तेज करना होगा। इसके लिए सरकार को अनुभवी और निष्पक्ष व्यक्तियों का चयन करना चाहिए, जो इस जटिल प्रक्रिया को कुशलतापूर्वक संचालित कर सकें। दूसरा, सरकार को कर्मचारी संगठनों और अन्य हितधारकों के साथ संवाद शुरू करना चाहिए, ताकि उनकी मांगों और सुझावों को प्रक्रिया के शुरूआती चरण में ही शामिल किया जा सके। तीसरा, सरकार को इस प्रक्रिया के लिए एक स्पष्ट समय-सीमा निर्धारित करनी चाहिए। उदाहरण के लिए, अगर आयोग को अपनी सिफारिशें 2025 के अंत तक प्रस्तुत करनी हैं, तो इसके लिए एक विस्तृत कार्ययोजना तैयार की जानी चाहिए। इसके अलावा, सरकार को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि आयोग को सभी आवश्यक संसाधन और डेटा समय पर उपलब्ध हों, ताकि वह अपनी जिम्मेदारी को प्रभावी ढंग से निभा सके।

आठवां वेतन आयोग न केवल सरकारी कर्मचारियों और पेंशनभोगियों के लिए, बल्कि पूरे देश के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। यह न केवल उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत करेगा, बल्कि अर्थव्यवस्था को गति देने और सामाजिक समानता को बढ़ावा देने में भी मदद करेगा। लेकिन इस प्रक्रिया में हो रही देरी ने कर्मचारियों की उम्मीदों पर अनिश्चितता का साया डाल दिया है। सरकार को इस दिशा में तत्काल कदम उठाने होंगे, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि आठवां वेतन आयोग अपनी सिफारिशें समय पर प्रस्तुत कर सके और इसे जनवरी 2026 से लागू किया जा सके। कर्मचारियों की यह उम्मीद अब सरकार की जिम्मेदारी है, और इसे पूरा करने के लिए समय कम बचा है। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

व्यक्ति विशेष

अरुण नैथानी

बड़ी लड़ाई जीतने की उम्मीद

पिछले दिनों तमिलनाडु के मदुरै में संपन्न भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, मार्क्सवादी की 24वीं कांग्रेस में पार्टी के समक्ष मौजूदा चुनौतियों को लेकर हुए गहन मंथन के बाद, मरियम अलेक्जेंडर बेबी को नया महासचिव चुना गया। यूं तो सीपीआई कांग्रेस में कई अप्रत्याशित फैसले हुए, लेकिन दशकों तक पार्टी के नीति-नियंता बने रहे दिग्गज नेताओं को मार्गदर्शक मंडल सरीखी भूमिका देना भी ध्यान खींचता है। दरअसल, सीपीआई (एम) के पूर्व महासचिव सीताराम येचुरी के निधन के बाद यह पद खाली था। तब से पूर्व महासचिव प्रकाश करात पार्टी के लिये समन्वयक की भूमिका निभा रहे थे।

निस्संदेह, देश में दक्षिणपंथ के स्वर्णिम काल में वामपंथ के समक्ष चुनौतियां स्वाभाविक हैं। एक समय देश की केंद्रीय सत्ता के निर्णयों को प्रभावित करने तथा पश्चिम बंगाल, केरल, त्रिपुरा आदि राज्यों में शासन करने वाली पार्टी आज सिर्फ केरल में ही सत्ता में बनी हुई है। लेकिन पार्टी पिछले एक दशक में लोकसभा में दहाई के आंकड़े से भी दूर है। ऐसे में एम.ए.बेबी के समक्ष पार्टी के विस्तार व संगठन को गति देने समेत तमाम चुनौतियां हैं। हालांकि, बेबी महासचिव बनने का साफ संकेत है कि पार्टी में केरल का दबदबा बना रहेगा। मगर बेबी के लिये केंद्र की सत्ता की राह दिखाने वाली हिंदी बेल्ट में अपनी उपस्थिति दर्ज कराना भी जरूरी होगा, जैसा सीताराम येचुरी और प्रकाश करात करने में सफल रहे।

सत्तर बसंत देख चुके मरियम अलेक्जेंडर बेबी का जन्म केरल के कोल्लम जनपद के प्रक्कुलम में हुआ। वे ईएमएस नंबूदरीपाद के बाद पार्टी का नेतृत्व करने वाले केरल के दूसरे नेता हैं। वे वर्ष 2012 में पार्टी के पोलित ब्यूरो के सदस्य बने थे। वे पोलित ब्यूरो में ईसाई समुदाय का एकमात्र प्रतिनिधि चेहरा हैं। वे छात्र संगठनों में सक्रिय भूमिका निभाकर राजनीति में कदम रखते हैं। वे स्टूडैंट फेडरेशन ऑफ इंडिया के राष्ट्रीय अध्यक्ष रह चुके हैं। साथ ही उन्होंने डेमोक्रेटिक यूथ फेडरेशन ऑफ इंडिया का अध्यक्ष पद भी संभाला। वे महज 32 साल की उम्र में राज्यसभा में सांसद बने। तब वे देश के सबसे कम उम्र के सांसदों में शामिल थे। वे एक दशक से ज्यादा समय तक राज्यसभा के सदस्य रहे। फिर वर्ष 1999 में पार्टी की केंद्रीय समिति के सदस्य बने। कालांतर वर्ष 2006 में उन्होंने केरल की कुंदरा विधानसभा से चुनाव लड़ा और जीता। जिसके बाद उन्हें शिक्षामंत्री बनाया गया। वे दूसरी बार भी कुंदरा सीट से चुनाव जीते थे। लेकिन वर्ष 2014 में उन्हें लोकसभा चुनाव के दौरान कोल्लम सीट से पराजय का मुख देखना पड़ा। साहित्य, संगीत व सिनेमा में दखल रखने वाले बेबी को सीपीआई(एम) का सांस्कृतिक दूत भी माना जाता रहा है।

हकीकत में बेबी को महासचिव के रूप में कांटों का ताज ही मिला है। फिलहाल, पार्टी अपने मुश्किल दौर से गुजर रही है। उसका जनाधार लगातार सिमटता जा रहा है। वर्ष 2004 भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (एम) ने सर्वोत्तम सफलता हासिल करते हुए लोकसभा में 43 सांसदों को भेजा था। इसे पार्टी का सुनहरा दौर कहा जाता है क्योंकि लोकसभा में मजबूत स्थिति के साथ ही पार्टी ने पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा में सरकार भी बनाई थी। आज संसद में उसके दस से कम सांसद हैं और राज्यों में केवल केरल में ही सरकार बची है। बताया जाता है कि उन्हें महासचिव बनाए जाने पर पार्टी में आम सहमति नहीं थी। कहा जाता है कि पार्टी की पश्चिम बंगाल इकाई ऑल इंडिया किसान सभा के अध्यक्ष को महासचिव बनाना चाहती थी। लेकिन पार्टी में केरल का दबदबा बेबी के पक्ष में गया। दरअसल, केरल के मुख्यमंत्री विजयन पार्टी में दमदार भूमिका में हैं। वे न केवल बेबी को महासचिव को बनाने में सफल रहे, बल्कि अधिक उम्र होने के बावजूद अपनी तीसरी पारी हेतु पार्टी की मोहर लगवाने में कामयाब हो गए।

बहरहाल, बेबी के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि कैसे पार्टी का खोया जनाधार फिर से जुटाया जाए। पार्टी के सिमटते दायरे को कैसे बढ़ाया जाए। चुनौती यह भी है कि केंद्र की सत्ता में काबिज भाजपा का संगठन केरल में लगातार विस्तार कर रहा है। यूं तो भाजपा के निशाने पर कांग्रेस गठबंधन वाला यूडीएफ है, लेकिन सीपीआई(एम) के लिये भी यह एक चुनौती है। कभी हिंदी प्रदेश बिहार, झारखंड व पंजाब में दखल रखने वाली भाकपा(म) के सामने इन राज्यों में फिर से संगठन स्थापित करने की चुनौती है। पता पार्टी को भी है कि हिंदी बेल्ट में दमखम रखने वाले येचुरी व करात जैसे व्यापक अपील वाले नेता संगठन में नहीं हैं।

ये आने वाला वक्त बताएगा कि अगले तीन वर्ष के कार्यकाल में बेबी पार्टी संगठन को राष्ट्रव्यापी आधार देने में कितना सफल होते हैं। उन्हें आत्ममंथन करना होगा कि क्यों पार्टी ने लगातार जनाधार खोया है और इसे फिर से कैसे हासिल किया जा सकता है। उनके सामने चुनौती पार्टी की आर्थिक स्थिति मजबूत करने की भी होगी, क्योंक पार्टी अन्य राजनीतिक दलों की तरह चंदा नहीं जुटाती। पार्टी के साथ युवाओं व छात्रों को भी जोड़ना होगा, क्योंकि विश्वविद्यालयों में वामपंथी छात्र संगठनों की आधारभूमि सिमटी है। भाजपा की तरह बूथ प्रबंधन की कला भी सीखनी होगी।

इसके साथ ही प्रश्न यह भी कि विभिन्न आंदोलनों में डंडे-झंडे के साथ उतरने वाले सक्रिय लोग पार्टी के वोटर क्यों नहीं बन पाते। पार्टी ने केंद्रीय समिति में तीस नये चेहरों को शामिल करके इस दिशा में पहल जरूर की है। पोलित ब्यूरो में भी नये सदस्यों को जगह दी गई है। विश्वास है कि केंद्रीय समिति के आमंत्रित सदस्यों प्रकाश करात, माणिक सरकार और सुभाषिनी अली का उन्हें समर्थन मिलता रहेगा। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

दूसरा मत

बुद्ध पूर्णिमा की हार्दिक शुभकामनाएं

पढ़ें और पढ़ाएं दूसरा मत

एक शुभचिंतक, दिल्ली

विनिर्माण पर हो जोर

अरुण मायरा

अमेरिका को फिर से महान बनाने के लिए डॉनल्ड ट्रंप जो कारोबारी कदम उठा रहे हैं, उन्होंने वैश्विक व्यापार व्यवस्था को बुरी तरह झिंझोड़ दिया है। ट्रंप के निशाने पर मुख्यरूप से चीन है। कुछ देश अमेरिका के साथ समझौता करना चाहते हैं। भारत के वार्ताकारों को भी

दीर्घकालिक रणनीति को ध्यान में रखकर काम करना चाहिए ताकि देश की औद्योगिक क्षमताओं को और अधिक गहरा बनाया जा सके, जो कई मायनों में चीन से पीछे हैं। जापान और चीन के औद्योगिक विकास का इतिहास हमें उपयोगी सबक देता है। वे अमेरिका के साथ कारोबारी सौदों के लिहाज से भारत की तुलना में बहुत मजबूत स्थिति में हैं। अमेरिका को उनके विनिर्माताओं की आवश्यकता है और वे अपने विशाल व्यापार अधिशेष को अमेरिकी राजकोष में निवेश करके अमेरिकी अर्थव्यवस्था को सहारा देते हैं।

जापान और चीन ने रणनीतिक रूप से मजबूत विनिर्माण उद्योगों का निर्माण किया। प्रतिस्पर्धी लाभ के सिद्धांत के आधार पर मुक्त व्यापार दीर्घावधि में हर किसी को लाभ प्रदान करता है। अगर हर देश केवल वही उत्पादन करता जो वह दूसरों से बेहतर कर सकता है और दूसरों से वही खरीदता जो दूसरे बेहतर उत्पादित कर पाते हैं, तो दुनिया भर में सभी लोग किफायती और उत्कृष्ट उत्पादों से लाभान्वित होते।

सैद्धांतिक नजरिए के साथ दिक्कत यह है कि जिंस को छोड़ दिया जाए तो प्रतिस्पर्धी बढ़त स्थिर नहीं रहती। औद्योगीकरण एक प्रक्रिया है जहां उद्यमी उन क्षमताओं को सीखते हैं जो उनके पास पहले नहीं थीं। व्यापार प्रबंधन प्रतिस्पर्धी बढ़त को बनाए रखने का तरीका है। हर वह देश जिसने प्रभावी ढंग से औद्योगीकरण किया (इनमें 19वीं सदी का अमेरिका शामिल है), उसने अपने उद्योगों की रक्षा की और साथ ही औद्योगिक क्षमताओं में इजाफा किया। औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देश बौद्धिक संपदा पर अपने एकाधिकार का बचाव करते हैं। दूसरी तरफ, वे ह्यसंरक्षणवादीह्व सरकारी नीतियों का हौवा खड़ा करके विकासशील देशों में उद्यमों के क्षमता विकास को रोकते हैं।

कम मुक्त से अधिक मुक्त व्यापार की ओर बढ़ने में आयात शुल्क को चरणबद्ध तरीके से कम करना शामिल है। किसी भी विकासशील अर्थव्यवस्था में तैयार उत्पादों को असेंबल करने वालों की संख्या उत्पादकों से हमेशा अधिक रहती है। असेंबल करना विनिर्माण का सबसे सरल रूप है। असेंबल करने वाले अंतिम उत्पाद को सीधे जनता को बेचते हैं। उनके ब्रांड अधिक नजर आते हैं और उन्हें मशीनरी आदि का उत्पादन करने वालों की तुलना में अधिक लोकप्रिय समर्थन मिलता है।

जब किसी अर्थव्यवस्था में खपत बढ़ती है तो असेंबल करने वाले भी तेजी से बढ़ते हैं। वे उपभोक्ताओं को कम कीमत पर उत्पाद मुहैया कराने के लिए कलपुर्जों के रियायती आयात की मांग करते हैं। उधर कलपुर्जे बनाने वाले मशीनों के रियायती आयात की मांग करते हैं ताकि वे अपनी उत्पादन लागत कम कर सकें। यह कारोबारी नीति आयातकों और असेंबल करने वालों को घरेलू पूंजीगत वस्तु निमार्ताओं पर तरजीह देती है और धीरे-धीरे देश की औद्योगिक क्षमताओं में कमी आने लगती है। औद्योगिक प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से इसके दीर्घकालिक परिणाम बहुत बुरे साबित होते हैं। भारत ने 1990 के दशक में औद्योगिक नीतियों को समय के पहले त्याग दिया। इसके विपरीत चीन के पूंजीगत वस्तु क्षेत्र का आकार भारत की तुलना में कई गुना अधिक हो गया और चीन द्वारा उच्च तकनीक आधारित निर्माण का निर्यात हमसे 48 गुना अधिक है।

जापान ने दूसरे विश्व युद्ध के बाद रणनीतिक रूप से अपने उद्योगों को तैयार किया। औद्योगिक और व्यापारिक नीतियों को अंतरराष्ट्रीय व्यापार और उद्योग मंत्रालय यानी एमआईटीआई के माध्यम से समन्वित किया गया। इसमें जापान के उद्योग निमार्ताओं को साथ लिया गया। सन 1990 तक जापान विनिर्मित वस्तुओं के मामले में दुनिया की फैक्टरी बन चुका था। इनमें वाहन और इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद और मशीनरी सभी शामिल थे।

उस समय चीन पूरी तस्वीर में कहीं नहीं था परंतु 2010 तक वह दुनिया की सबसे बड़ी फैक्ट्री बन गया। इसके लिए उसने नियम आधारित विश्व व्यापार संगठन और बौद्धिक संपदा अधिकारों के व्यापार संबंधित पहलू वाली व्यापार व्यवस्था को रणनीतिक ढंग से अपनाया, जिसने 1995 में टैरिफ और व्यापार पर सामान्य समझौते का स्थान लिया था।

मुक्त व्यापार कभी भी सही मायनों में निरपेक्ष व्यापार नहीं रहा। सबसे ताकतवर देश नियम बनाते हैं और जब वे नियम उनके अनुरूप नहीं रहते तो उन्हें बदल देते हैं। विश्व व्यापार संगठन के बाद औद्योगिक नीतियों को रोक दिया गया क्योंकि वे घरेलू उद्योगों को बचाती हैं। ट्रिप्स ने अमेरिका और पश्चिमी कंपनियों की बौद्धिक संपदा का बचाव किया जिसके जरिये वे वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला में मूल्य निर्माण को नियंत्रित करती हैं। सच तो यह है कि चीन के उद्योगों ने अमेरिकी उद्योगों के तर्ज पर उत्पादन करना सीख लिया।

भारत की बात करें तो देश इस समय एक चौराहे पर खड़ा है। क्या उसे पश्चिमी व्यापारिक दबाव के सामने झुक जाना चाहिए या फिर अपनी औद्योगिक शक्ति तैयार करनी चाहिए? भारत एक बड़ा बाजार हो सकता है, विदेशी और घरेलू निवेशकों को आकर्षित कर सकता है बशर्ते कि देश में आय बढ़े तथा अधिक संख्या में लोग रोजगारशुदा हों और उनके कौशल में भी सुधार हो।

विभिन्न अर्थव्यवस्थाएं नई क्षमताएं सीखने की प्रक्रिया के सहारे आगे बढ़ती हैं। किसी देश की घरेलू उद्यमिता को वह सब करना सीखना चाहिए जो वे पहले नहीं कर पाती थीं। इन उद्यमों में काम करने वालों को भी नए कौशल सीखने चाहिए। भारत को श्रम बाजार के बारे में अपने नजरिए में बुनियादी बदलाव की जरूरत है। श्रमिक केवल उत्पादन के संसाधन नहीं हैं कि जरूरत खत्म हो जाने पर उनको खारिज कर दिया जाए। वे किसी देश की वृद्धिशील परिसंपत्ति हो सकते हैं ठीक वैसे ही जैसे जापान के श्रमिक बने। यानी नए कौशल सीखते हुए और उद्यमिता को नवाचार के माध्यम से बढ़ाते हुए उच्चस्तरीय तकनीक के साथ प्रतिस्पर्धा करते हुए। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

विश्वनाथ सचदेव
वरिष्ठ पत्रकार, स्तंभकार

त्रिभाषा फार्मूला

हिंदी हमारे देश की राजभाषा का नाम है, पर इसे एक और अर्थ में भी समझा जा सकता है- वह अर्थ है हिंदी यानी हिंदोस्तां का। अल्लामा इकबाल ने लगभग सवा सौ साल पहले लिखा था, 'हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्तां हमारा' आजादी की लड़ाई के दौरान ही हमारे स्वतंत्रता-सेनानियों ने हिंदी को पूरे देश की भाषा के रूप में मान्यता दे दी थी। फिर, जब संविधान के निर्माण का कार्य चल रहा था तो इस आधार पर हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकारे जाने की बात कही गई थी कि देश में हिंदी को समझने वालों की संख्या अन्य सभी भारतीय भाषाओं से अधिक है। यहां यह जानना महत्वपूर्ण होगा कि हमारे संविधान निमार्ताओं में हिंदी की वकालत करने वाले मुख्यतः अहिंदी भाषी नेता ही थे। हिंदी को राजभाषा घोषित किये जाने की मांग करने वालों में सबसे पहला नाम दक्षिण भारतीय विद्वान गोपालस्वामी अय्यंगर का है। उन्होंने ही गुजराती भाषी के.एम. मुंशी के साथ मिलकर इस आशय का प्रस्ताव संविधान सभा में रखा था, जिसे भरपूर समर्थन मिला।

जब हम आजाद हो गये तो यह बात एक स्वीकृत सत्य की तरह मान ली गयी थी कि अब देश का काम देश की भाषा- हिंदी में होगा। पर इसी बीच दक्षिण और उत्तर के नाम पर हिंदी को लेकर विवादास्पद बातें भी होने लगीं। दक्षिण में, विशेष कर तमिलनाडु में, यह भावना उठने लगी कि हिंदी के माध्यम से उत्तर भारत दक्षिण भारत पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लेगा। बात भले ही सांस्कृतिक आधिपत्य के रूप में की जा रही थी, पर यह भी सत्य है कि कथित 'हिंदी साम्राज्यवाद' की आशंका के पीछे कहीं न कहीं राजनीतिक वर्चस्व की आशंका भी थी। हालांकि ऐसा कुछ था नहीं। हिंदी की स्वीकार्यता की बात का आधार यही तथ्य था कि देश में हिंदी बोलने-समझने वालों की संख्या सर्वाधिक थी। हिंदी को राजभाषा बनाने का कदापि यह अर्थ नहीं था कि हिंदी देश की अन्य भाषाओं से कहीं बेहतर या ऊंची भाषा है। आज भी यदि ऐसी कोई भावना किसी में है, तो वह गलत है। हिंदी देश की, विशेष कर दक्षिण भारत की, भाषाओं से तुलना में कहीं कम समृद्ध है। हिंदी को तो मुख्यतः इसलिए स्वीकारा गया कि इससे देश भर में संवाद कुछ

आसान हो जायेगा। हिंदी वालों को, और गैर-हिंदी भाषियों को यह बात समझनी ही होगी कि हिंदी देश की बाकी भाषाओं की बड़ी बहन नहीं, एक सखी है। दोस्ती में कोई छोटा या बड़ा नहीं होता। सब बराबर होते हैं।

इसी भावना के साथ यह माना गया कि देश के लोगों को तीन भाषा तो सीखनी ही चाहिए- एक अपनी मातृभाषा, दूसरी अंग्रेजी, और तीसरी देश की कोई अन्य भाषा। हमारी नयी शिक्षा-नीति में भी यही सोचकर तीन भाषाओं की बात कही गयी। आशा और अपेक्षा यह थी कि दक्षिण वाले हिंदी सीख लेंगे, और उत्तर वाले कोई भारतीय भाषा। पर हिंदी वालों से यहां जानबूझकर या अनायास ही एक चूक हो गयी-उन्होंने तमिल या मलयालम या बांग्ला या कन्नड़ आदि भारतीय भाषाओं में से किसी एक को सीखने के बजाय संस्कृत को सीखना ज्यादा पसंद कर लिया। संस्कृत पढ़ने में कुछ गलत नहीं है, पर यह उस अपेक्षा के अनुरूप नहीं था जिसे आधार बनाकर त्रिभाषा फामूर्ला लागू किया गया था। इसी अपेक्षा की पूर्ति के लिए नयी शिक्षाझनीति में त्रिभाषा फामूर्ला स्वीकारा गया। पर, दुर्भाग्य से अब भी दक्षिण, पूर्व या पश्चिम भारत वालों में से कुछ लोगों को इसमें 'हिंदी साम्राज्यवाद' की गंध आ रही है। इस सोच का नवीनतम उदाहरण महाराष्ट्र में दिख रहा है। महाराष्ट्र सरकार ने नयी शिक्षा- नीति में किये गये प्रावधान को स्वीकारते हुए स्कूली स्तर पर मातृभाषा, अंग्रेजी और हिंदी को अनिवार्य बनाया है। यह अनिवार्यता कुछ तत्वों को खल रही थी। यह तत्व अब भी इस गलतफहमी के शिकार हैं कि इस शिक्षा-नीति से उनकी मातृभाषा को नुकसान पहुंचाने का कोई षड्यंत्र रचा जा रहा है ! हैरानी की बात तो यह है कि हिंदी सीखने-सिखाने का विरोध करने वाले यह तत्व अंग्रेजी को त्रिभाषा फामूर्ले का हिस्सा बनने पर चुप हैं। बिना किसी ठोस आधार के उन्होंने एक विदेशी भाषा, अंग्रेजी, को तो सहज स्वीकार लिया है, पर अपने ही देश की एक भाषा, हिंदी, को स्वीकारने को वे 'थोपा जाना' मान रहे हैं। हकीकत यह है कि कल भी हिंदी का विरोध करने के पीछे राजनीतिक स्वार्थ थे, और आज भी राजनीतिक स्वार्थ ही महाराष्ट्र समेत देश के कुछ हिस्सों में हिंदी का विरोध करवा रहे हैं।

अंग्रेजी विश्व की एक प्रमुख भाषा है, इसमें कोई संदेह नहीं। अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों की दृष्टि से सीखना-समझना कहीं गलत नहीं है। पर इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, या नहीं किया जाना चाहिए, कि अंग्रेजी सारी दुनिया की नहीं, दुनिया के कुछ ही देश की भाषा है। जापान, जर्मनी, फ्रांस, चीन, रूस जैसे न जाने कितने ही देश हैं जिन्होंने अंग्रेजी की अनिवार्यता को अनुचित माना है। अपनी भाषा में काम-काज करने की उनकी जिद से उन्हें कहीं कोई नुकसान नहीं पहुंचा। उल्टे उन्होंने इस ज़िद को अपनी अस्मिता के संदर्भ में समझा है। होना यह चाहिए था कि महाराष्ट्र में अंग्रेजी की अनिवार्यता पर सवाल किया जाता। विश्व-व्यापार के लिए अथवा अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों की दृष्टि से यदि अंग्रेजी सीखने की जरूरत है तो उनसे जुड़े लोग यह भाषा सीख लेंगे- हर भारतीय को इसे सीखने की विवशता क्यों? इसलिए, विरोध यदि जरूरी है तो वह अंग्रेजी की अनिवार्यता का होना चाहिए। हिंदी का नहीं।

महाराष्ट्र में हिंदी सीखने-सिखाने के इस विरोध के पीछे बच्चों पर भाषाई-बोझ का तर्क भी दिया जा रहा है। मुख्य बात तो यह है कि भाषा बच्चों पर बोझ नहीं होतीं, बड़ों की तुलना में वह कहीं अधिक आसानी से भाषाएं सीख लेते हैं। फिर भी यदि किसी को तीन भाषाओं की अनिवार्यता बोझिल लग रही है तो विरोध एक विदेशी भाषा, अंग्रेजी, का होना चाहिए, अपने ही देश की सर्वाधिक बोली-समझी जाने वाली भाषा, हिंदी, का नहीं।

भाषा की राजनीति से कुछ राजनीतिक स्वार्थ भले ही सध जाते हों, पर यह राजनीति हमें टुकड़ों में बांटने वाली है। हमें तो इस बात पर गर्व होना चाहिए कि हमारे पास इतनी सारी समृद्ध भाषाएं हैं। ये सारी भाषाएं हमारी पहचान हैं, हमारा गौरव हैं। हिंदी की अनिवार्यता से मराठी को नुकसान पहुंचाने के सोच वालों को यह समझना चाहिए कि हिंदी नहीं, अंग्रेजी से हमारी भाषाओं को खतरा है। आज देश के सब हिस्सों में अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की बाढ़-सी आ गयी है। पिछले कुछ सालों में मुंबई में मराठी और हिंदी माध्यम के सौ से अधिक स्कूल बंद हो चुके हैं। चिंता इस बात की होनी चाहिए कि ऐसा क्यों हो रहा है, और कैसे इस प्रवृत्ति को रोका जाये। हमारी भाषाएं हमारी पहचान हैं। चिंता इस पहचान को बचाए रखने की होनी चाहिए। ●

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

समय की मांग चुनाव सुधार!

डॉ. बालमुकुंद पांडेय

राजनीतिक दलों के आंतरिक चुनाव में, जो मतदाता वोट देते हैं, उनका नामांकन भी राजनीतिक दल के प्रभावशाली व्यक्ति ही करते हैं। यह मौलिक रूप में लोकतंत्र विरोधी है। इसका परिणाम यह होता है कि एक ही व्यक्ति चुनाव लड़ता रहता है और राजनीतिक दल में ऊपर जाना अत्यधिक दुष्कर होता हैं। जगदीप चोखर ने इन चुनावों को 'दिखावटी/ बनावटी चुनाव' कहा है। चुनाव की प्रणाली में करने योग्य परिवर्तनों /बदलावों को चुनाव सुधार कहते हैं, जिनके आवेदित करने से जनता को आकांक्षाएं व अपेक्षाएं चुनाव परिणामों के रूप में अधिकाधिक परिणति होने लगें।

1994 में न्यायमूर्ति बी.आर.कृष्णन अय्यर समिति ने सभी राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र को सुनिश्चित करने और लेखा एवं लेखा परीक्षा की कानूनी मंजूरी की मांग की थी। इसी प्रकार विधि आयोग ने में भी अपनी 170 वीं प्रतिवेदन 'चुनाव कानूनों के सुधार' में स्पष्ट कहा था कि 'राजनीतिक दल भीतर से तानाशाही और बाहर से लोकतांत्रिक नहीं हो सकते हैं'। इसके साथ ही विधि आयोग ने यह संस्तुति किया था कि राजनीतिक दलों की संभावित सांप्रदायिक गतिविधियों या उनके अन्य संवैधानिक कार्यों का निरीक्षण करने के लिए एक अलग से 'आयुक्त' नियुक्ति की जानी चाहिए।

आम चुनाव के दौरान मतदाता और उम्मीदवार के बीच सूचना की न्यूनता के कारण, जो दूरी उत्पन्न होती है, वह न्यून हो जाती हैं। और मतदाता सूचना पर आधारित संतुलित निर्णय ले पाता हैं, जिससे वह सत्ता की गलियारों में भेजने के लिए सही प्रतिनिधि को चुन पता है। वर्ष 2002 के पश्चात सर्वोच्च न्यायालय के निदेर्शानुसार उम्मीदवारों के लिए शपथ-पत्र पर शैक्षणिक और वित्तीय सूचनाओं को उपलब्ध कराना अनिवार्य कर दिया गया है।

राजनीतिक दलों के वित्तीय आधार में सुधार की बात की जाए, तो राजनीतिक चंदे के रूप में चुनावी बांड के मुद्दे पर चर्चा करने से बचा नहीं जा सकता है। चुनावी बांडों से वास्तविक स्तर पर 'याराना पूंजीवाद' (क्रॉनिक केपीटलाइज्म) ही प्रोत्साहित होता है। यह एक सुधार एवं प्रतिगामी सुधार है। कंपनियां करोड़ों रुपए इधर-उधर कर सकती है। और किसी को भनक भी नहीं लगेगी कि पैसा किसने किसको दिया? यह व्यवस्था कुछ भी हो, लेकिन पारदर्शी किसी तरह से नहीं है! इसका परिणाम यह होता है कि पूंजीपति देश चलाएंगे, जो संभवत वर्षों से करते आ रहे हैं। अब एक कंपनी अपने फायदे का 100% किसी राजनीतिक दल को चंदे के रूप में दे सकती है। और बदले में वह राजनीतिक डालर सत्ता में आकर उस कंपनी के अनुरूप नीतियों का निर्माण करेगा। ऐसी व्यवस्था का संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में जबरदस्त विरोध हुआ था, जिससे वहां लूट प्रणाली पर नियंत्रण स्थापित हुआ था।

चुनाव प्रचार के दौरान राजनीतिक दल जो खर्चा/ व्यय करते हैं, उसे चुनाव मैदान में उतरे उम्मीदवारों के लिए निर्धारित व्यय की अधिकतम सीमा में नहीं जोड़ा जाता है। अपराधी व्यक्तियों को चंदा देना सरल हो गया है। और बदले में उन्हें अपने अनुरूप कानून बनवाने की स्वायत्तता मिल जाती है। इस तरह राजनीतिक व्यवस्था में अपराधीकरण प्रारंभ हो जाता है। चुनाव सुधार पर भारत सरकार ने 1990 में दिनेश गोस्वामी समिति गठन की थी, जिसने संस्तुति किया था कि मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों को राज्य की ओर से धन के रूप में सीमित वित्त पोषण प्रदान किया जाए।

राज्य व्यवस्था दलों का यह वित्त पोषण चुनाव प्रचार के दौरान पानी की तरह पैसा बहाने की मनोवृत्ति पर नियंत्रण करेगा, जिससे राजनीति में धन -बल पर नियंत्रण होगा। 2012 में 'स्टॉकहोम्स इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर डेमोक्रेसी एंड इलेक्टोरल्स एसोसिएशन' ने एक अध्ययन किया था जिसका शीर्षक 'पॉलिटिकल फाइनेंस रेगुलेशंस अराउंड द वर्ल्ड' था। यह अध्ययन 180 सभ्य राष्ट्रों में किया गया था। और एक आश्चर्यजनक तथ्य उभरकर आया कि 71 देशों/राज्यों में चुनाव में प्राप्त मतों के आधार पर राज्य ने वित्त पोषण किया गया था। तुलनात्मक आधार पर अध्ययन करें, तो स्पष्ट होता है कि यूरोप के 86%, अफ्रीका के 71%, उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के 58% और एशिया के 58 % देश में इस तरह की व्यवस्था अपनाई गई हैं इस व्यवस्था को अपनाकर राजनीतिक व्यवस्था को मजबूती प्रदान किया जाए, इसके लिए आवश्यक है कि नेतृत्व स्तर पर मजबूत राजनीतिक इच्छा शक्ति की आवश्यकता है!

सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा ने इस विषय पर निर्णय दिया था कि न्यायालय संसद की भूमिका में नहीं हो सकता हो सकती है। संसद इस मामले में अनुच्छेद 102(1) के अनुसार कानून बना सकती है। राजनीति के अपराधीकरण के विरुद्ध चुनाव आयोग पिछले दो दशकों से संघर्ष कर रहा है। और आयोग के लगातार गुहार लगाने के बावजूद

न्यायपालिका ने इसकी सहायता करने में असमर्थता जाहिर की है, क्योंकि न्यायपालिका के पास मुकदमों का अत्यधिक बोझ है।

चुनाव आयोग का सुधार एवं मतदाता सहभागिता बढ़ाने के लिए ट- 3 इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के संशोधित संस्करण के रूप में रिमोट इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन तैयार किया गया है, जिससे शिक्षा, रोजगार या अन्य काम से देश(राज्य) में रहने वाले व्यक्ति चुनाव में सहभागिता कर सकें। चुनाव आयोग ने घरेलू प्रवासी, मतदाताओं, बीमारों, बुजुर्गों एवं शहर से पलायित करके बाहर जाने वाले श्रमिकों के लिए रिमोट इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन विकसित करके एक नूतन उपयोगिता दी है। ऐसे करोड़ व्यक्ति अपने मताधिकार(संवैधानिक अधिकार) का उपयोग नहीं कर पाए, क्योंकि सैकड़ो किलोमीटर की यात्रा करके अपने गांव घर वोट डालने में सुविधाजनक नहीं होता है। एक अनुमान के अनुसार 30 करोड़ मतदाता वोट करने से वंचित रह जाते हैं। ऐसे मतदाताओं के लिए रिमोट एवं लोकतांत्रिक व्यवस्था में वरदान सिद्ध होगा।

राजनीतिक दलों के निर्माण, वित्तीय व्यवस्था, लेखा-परीक्षा और संचालन में अनेक खामियां हैं, जिन्हें दूर करके एक स्वस्थ लोकतांत्रिक प्रणाली का निर्माण किया जा सकता है। लोकतंत्र में राजनीतिक दल सत्ता के लिए संवाहक होते हैं।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में पारदर्शिता समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय की भावना को मजबूती से लागू करना होता हैं ।यह तभी संभव है जब शासन में सुशासन के तत्व समाहित होते हैं। लोकतंत्र को विचार या विचारों के पुंज के रूप में लागू करना होता हैं ।अपने निजी हितों के लिए वर्तमान विधियों को कमजोर करने और व्यवस्था को अपने अनुरूप ढालने की बजाय सभी राजनीतिक दलों को अपने निजी हितों का परित्याग करके

राष्ट्रीय एकता की भावना से सोच को बढ़ाना होगा। इन्हीं शुभ प्रयासों से मजबूत लोकतंत्र का निर्माण हो सकता है।

चुनाव सुधार की दिशा में आवश्यक एवं लोकस्वीकृति से यह कदम उठाया गया हैं कि किसी भी बूथ पर मतदाताओं की संख्या 1200 से अधिक नहीं होनी चाहिए। चुनाव आयोग ने सभी राज्यों को निर्देश दिया है कि वह ऐसे मतदाता बूथों की पहचान करें, और मतदाताओं की संख्या 1200 तक सीमित करें। इस कारण मतदान प्रक्रिया समय सीमा पर पूरी होगी। और मतदान के आंकड़े समय पर उपलब्ध होंगे। वर्तमान में देश में कई ऐसे मतदान केंद्र हैं, जहां मतदाताओं की संख्या 1500 या इससे अधिक है,जिससे समय पर मतदान पूरा नहीं हो पता है। देश में वर्तमान में साढ़े दस लाख से अधिक मतदान केंद्र हैं। आयोग की सक्रिय पहल के बाद मतदान केदो की संख्या में वृद्धि की संभावना और बढ़ जाएगी।

निर्वाचन आयोग की सक्रिय पहल से 66 करोड़ से अधिक मतदाताओं के आधार उपलब्ध हैं, जिन्हें मतदाता पहचान पत्रों से जोड़ने के लिए मतदाताओं ने स्वैक्षिक रूप से अपने आधार कार्ड उपलब्ध करवाए हैं। चुनाव आयोग ने इसके पक्ष में तर्क दिया है कि वोट देने का अधिकार संवैधानिक अधिकार है, जो देश(राज्य) के नागरिकों को प्राप्त है। लोक प्रतिनिधित्व कानून के अनुच्छेद 326 के अंतर्गत वोट देने का अधिकार मात्र देश के नागरिकों को है। भारत की नागरिकता वैध पहचान पत्र से ही संभव है, जिसमें प्रमुख आधार पहचान पत्र है। इस सक्रिय पहल से निम्न सहयोग हो सकता है।

1.मतदाता सूची से जुड़ी गड़बड़ियां समाप्त होगी।

2 . मतदाताओं की एक प्रमाणित एवं वैद्य सूची देश के सामने आएगी।

3 . मतदाता सूची में फर्जी नाम नहीं जुड़ सकेंगे।

4. मतदाता सूची में दो राज्यों में नाम नहीं रहेंगे।

5.राजनीतिक दलों की शिकायतें खत्म हो जाएगी।

6.मतदान व्यवहार में पारदर्शिता, जनता का विश्वास और वोट व्यवहार में सम्मिलित दलालों की संख्या पर नियंत्रण होगा।

सुझावः

1. मतपत्र के बजाय इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का प्रयोग होना चाहिए।

2. अनिवार्य मतदान के लिए कानून बने।

3. किसी को मत नहीं का विकल्प दिया जाए।

4. निर्वाचित प्रतिनिधियों को हटाने या बुलाने की व्यवस्था की जाए।

5. स्त्रियों एवं निर्बल समूहों के लिए स्थानों का आरक्षण किया जाए।

●●●

(लेखक अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, दिल्ली झंडेवालान के राष्ट्रीय संगठन सचिव हैं। और ये इनके अपने विचार हैं)

एक और विकल्प यह हो सकता है कि राज्यपाल की नियुक्ति केंद्र सरकार के बजाय एक स्वतंत्र, बहुपक्षीय समिति करे। जिसमें सुप्रीम कोर्ट, राज्यसभा व लोकसभा के प्रतिनिधि और संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री की भी भूमिका हो। सुप्रीम कोर्ट का यह निर्णय सिर्फ एक राज्य की संवैधानिक व्यवस्था का पुनसंर्योजन नहीं है, बल्कि पूरे भारत के संघीय ढांचे की गरिमा को पुनर्स्थापित करने की दिशा में एक साहसी हस्तक्षेप है। एक ऐसा संदेश जो राज्यपालों के साथ-साथ केंद्र सरकार को भी गहराई से समझना होगा।

तमिलनाडु राज्यपाल विवाद : अदालत ने दिखाई राह

जयसिंह रावत

तमिलनाडु के राज्यपाल आर.एन. रवि की भूमिका को लेकर सुप्रीम कोर्ट काा 8 अप्रैल, 2025 को दिया गया निर्णय भारतीय संघीय ढांचे के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ है। अदालत ने साफ शब्दों में कहा कि राज्यपाल किसी विधेयक को अनिश्चितकाल तक लंबित नहीं रख सकते, उन्हें या तो मंजूरी देनी होगी, असहमति के साथ लौटाना होगा, या राष्ट्रपति के पास भेजना होगा। यह निर्णय केवल एक कानूनी निर्देश नहीं, बल्कि सुप्रीम कोर्ट का राज्यपालों के लिए एक स्पष्ट 'लक्ष्मण रेखा' खींच देने जैसा है, जिससे बाहर जाना अब संविधान की आत्मा के विरुद्ध माना जाएगा। तमिलनाडु प्रकरण और सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक फैसले ने केवल एक संवैधानिक संकट का समाधान नहीं किया, बल्कि एक बुनियादी सवाल भी खड़ा किया है। लोकतांत्रिक भारत में राज्यपाल की प्रासंगिकता।

राज्यपाल का पद अगर लोकतंत्र के सहायक संरक्षक की भूमिका निभाए, तो वह उपयोगी हो सकता है, लेकिन जब वह केंद्र सरकार का राजनीतिक उपकरण बन जाता है, तब यह पद संविधान की आत्मा के विरुद्ध चला जाता है। आज का युग जन-जागरूकता और जवाबदेही का है। अब समय आ गया है कि हम यह मूल्यांकन करें कि क्या वाकई राज्यपाल का पद भारतीय संघीय ढांचे को मजबूत कर रहा है? तमिलनाडु में राज्यपाल रवि ने राज्य सरकार के पारित 12 विधेयकों को महीनों तक रोके रखा, जिनमें से कई को बिना कारण बताए राष्ट्रपति के पास भेज दिया और कुछ को लौटाया भी। उन्होंने सदन के अभिभाषण के दौरान सरकार के तैयार भाषण को अधूरा पढ़ा। और बीच में ही वॉकआउट कर दिया। ये सभी घटनाएं संविधान की भावना और राज्यों की स्वायत्तता के खिलाफ मानी गईं। सुप्रीम कोर्ट ने इन कृत्यों को 'लोकतंत्र की उपेक्षा' बताया और स्पष्ट किया कि राज्यपाल को मंत्रिपरिषद की सलाह का पालन करना अनिवार्य है।

यह कोई पहली घटना नहीं है जब राज्यपाल और निर्वाचित सरकार के बीच टकराव सामने आया हो। उत्तराखंड में 2016 में बहुमत परीक्षण से पहले राष्ट्रपति शासन लागू कराना, महाराष्ट्र में 2019 में तड़के सरकार बनवाना, अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम में असंवैधानिक हस्तक्षेप, पश्चिम बंगाल और पंजाब जैसे राज्यों में राज्यपालों ने मंत्रिपरिषद की सलाह की उपेक्षा की। ये सभी उदाहरण बताते हैं कि राज्यपाल का पद बार-बार विवादों में रहा है। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रहे रोमेश भंडारी ने 1998 में कल्याण सिंह की सरकार को बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन लगाने की अनुशंसा की थी, जिसे बाद में न्यायपालिका ने असंवैधानिक करार दिया। इसी प्रकार, आंध्र प्रदेश के राज्यपाल रहे रामलाल, जो पहले हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री भी रह चुके थे, ने 1984 में एन.टी. रामाराव की निर्वाचित सरकार को हटा दिया और केंद्र के समर्थन से विपक्षी नेता को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिला दी। इस निर्णय के खिलाफ जनांदोलन खड़ा हुआ, जिसे अंततः राष्ट्रपति को

पलटना पड़ा।

राज्यपाल के पद को लेकर संविधान सभा में भी गहन बहस हुई थी। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने स्पष्ट किया था कि राज्यपाल केवल 'संवैधानिक प्रमुख' होंगे और वे अपनी व्यक्तिगत राय से नहीं, बल्कि राज्य मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करेंगे। कुछ सदस्यों ने यह चिंता भी जताई थी कि राज्यपाल कहीं केंद्र सरकार का प्रतिनिधि बनकर राज्यों की स्वायत्तता को बाधित न करे। लेकिन यह माना गया कि अगर पद का उपयोग संवैधानिक मर्यादाओं के भीतर हो, तो यह संतुलन बनाए रखने में सहायक हो सकता है। संविधान निर्माताओं ने राज्यपाल को 'नामित प्रमुख' के रूप में देखा था एक ऐसा पद जो केवल सलाहकार भूमिका निभाएगा, और राज्य की चुनी हुई सरकार की सिफारिशों पर ही कार्य करेगा। लेकिन आज की स्थिति देखें, तो साफ प्रतीत होता है कि राज्यपाल कई बार संविधान निर्माताओं की उस भावना से विचलित हुए हैं। सुप्रीम कोर्ट को बार-बार दखल देना पड़ रहा है, जो इस व्यवस्था की कमजोरी को उजागर करता है।

निःसंदेह, यदि राज्यपाल की भूमिका बार-बार अलोकतांत्रिक साबित होती रहे, तो इसके विकल्पों या इस पद की समाप्ति पर गंभीर विचार जरूरी है ताकि सत्ता नहीं, संविधान सर्वोपरि हो। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 155 कहता है कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी, लेकिन यह नियुक्ति केंद्र सरकार की सिफारिश पर होती है। इसी कारण राज्यपालों की निष्पक्षता पर सवाल उठते रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट ने हाल ही में राज्यपालों को विधेयकों पर अनिश्चितकाल तक निर्णय टालने से रोका है, जिससे यह बहस फिर तेज हुई है कि क्या यह पद सार्थक है?

एक और विकल्प यह हो सकता है कि राज्यपाल की नियुक्ति केंद्र सरकार के बजाय एक स्वतंत्र, बहुपक्षीय समिति करे। जिसमें सुप्रीम कोर्ट, राज्यसभा व लोकसभा के प्रतिनिधि और संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री की भी भूमिका हो। सुप्रीम कोर्ट का यह निर्णय सिर्फ एक राज्य की संवैधानिक व्यवस्था का पुनसंर्योजन नहीं है, बल्कि पूरे भारत के संघीय ढांचे की गरिमा को पुनर्स्थापित करने की दिशा में एक साहसी हस्तक्षेप है। एक ऐसा संदेश जो राज्यपालों के साथ-साथ केंद्र सरकार को भी गहराई से समझना होगा। ●

(ये लेखक के अपने दृष्टिकोण हैं)

डॉ. बालमुकुंद पांडेय
वरिष्ठ स्तंभकार

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के 'पंच परिवर्तन' के निहितार्थ

संघ इस वर्ष 2025 में शताब्दी वर्ष मनाने जा रहा हैं। इस महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक पड़ाव के पहले, संघ ने व्यक्ति, समाज एवं संगठन में व्यापक परिवर्तन लाने के उद्देश्य से 'पंच परिवर्तन' की महत्वपूर्ण योजना प्रस्तुत की है। इन पंच प्रत्ययों का उद्देश्य संघ के आंतरिक सांगठनिक चरित्र और कार्यशैली को मजबूत करना है। भारतीय ज्ञान परंपरा,सनातन धर्म और राष्ट्रीय सुरक्षा को अधिक मजबूत बनाना हैं। इसका उद्देश्य समाज में सामाजिक समरसता और अधिक सहभागितापूर्ण और राष्ट्र केंद्रित वातावरण बनाना है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का मानना हैं कि 'पंच परिवर्तन' इन चुनौतियों का प्रभावी ढंग से मुकाबला करने में केंद्रीय भूमिका निभा सकता है। इन प्रत्ययों के सहयोग से राष्ट्र की एकता एवं अखंडता का उन्नयन किया जा सकता है। इनके सहयोग से नागरिक समाज में नागरिक चारित्रिक सौहार्द्र एवं नागरिक समरसता को विकसित किया जा सकता है।

संघ का मानना है कि एक सशक्त, सुसंकृत, और प्रत्येक क्षेत्र में प्रगतिशील राष्ट्र के लिए 'सामाजिक समरसता' अनिवार्य है। जाति, धर्म, वंश और लिंग के आधार पर विभेदित कोई भी राष्ट्र राष्ट्रीय एकता, अक्षुण्णता और आंतरिक सुरक्षा के स्तर पर विकास के मापांक को प्राप्त नहीं सकता है। राष्ट्र का विकास 'सामाजिक समरसता' पर निर्भर करता हैं। 'सामाजिक समरसता' से संघ का उद्देश्य सभी वर्गों में सामाजिक सदभाव ,स्नेह और सहयोग की भावना का उन्नयन करना है।

इस प्रयोजन का मौलिक उद्देश्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना है,जहां प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर मिले। और कोई भी व्यक्ति भेदभाव का शिकार न हों। सामाजिक समरसता भारतीय संस्कृति का मूल तत्व हैं और इसको पुनर्स्थापित करके भारत को वैश्विक गुरु की श्रेणी में स्थापित किया जा सकता हैं। मयार्दा पुरुषोत्तम श्रीरामजी का केवट को गले लगाना सामाजिक समरसता का सर्वोच्च उदाहरण है। जब समानता का भाव स्थापित होगा, तभी समानता का भावना स्थापित होगा।

समाज की संपूर्णता एवं सजीवता के निमित्त प्रत्येक व्यक्ति की खुशहाली, सहभागिता, एवं समर्पण अतिआवश्यक है, चाहे वह किसी भी वर्ण, जाति एवं समुदाय का हो। समाज में समरसता के बिना बंधुत्व, सौहार्द्र ,और राष्ट्रीय एकता की कल्पना असंभव है।

'कुटुंब प्रबोधन' के अंतर्गत संघ का उद्देश्य परिवारों को भारतीय संस्कृति, परंपराओं और मूल्यों के प्रति सजग करना है। इसके लिए पारिवारिक मिलन समारोह, सांस्कृतिक कार्यक्रम, बौद्धिक वर्गों का आयोजन और नैतिक शिक्षा वर्गों का आयोजन किया जाएगा। अभिभावकों को अपने बच्चों में भारतीय मूल्य जैसे कि बड़ों का सम्मान, कर्तव्यनिष्ठ आदत,चरित्र, सहयोग,स्नेहपूर्ण वातावरण और त्याग की भावना को विकसित करने के लिए प्रशिक्षित एवं प्रोत्साहित करना है। संघ के चिंतकों और विचारकों का मानना है कि एक मजबूत और संस्कारित परिवार ही एक स्वस्थ, राष्ट्रीय भावना और स्वस्थसमाज और राष्ट्र-राज्य का निर्माण कर सकता है।

'पर्यावरण संरक्षण' समकालीन परिदृश्य में एक बड़ी वैश्विक चुनौती है। प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन और प्रदूषणों ने पर्यावरण को बहुत अधिक मात्रा में नुकसान पहुंचाया है, जिसका मानवजीवन और भविष्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है । संघ का उद्देश्य अपने स्वयंसेवकों और संगठित समाज को पर्यावरण के प्रति सचेत करना है। संचेतना के स्तर पर वृक्षारोपण अभियान, जल संरक्षण परियोजनाएं, प्लास्टिक के उपयोग को सीमित करने का प्रयास और पर्यावरण अनुकूल जीवनशैली को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना एवं पर्यावरण हितैषी

कार्यक्रमों का आयोजन परमावश्यक है।

संघ का मानना है कि शारीरिक और मानसिक विकास के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता अति आवश्यक है। भारतीय उत्पादों को अपने स्थानीय व्यवसायों को अपनाने एवं उनका उन्नयन करने और भारतीयों को आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित करना 'स्वाधारित जीवनशैली' का अभिन्न भाग है। एक मजबूत, स्वावलंबी एवं आत्मनिर्भर भारत ही वैश्विक स्तर पर मजबूत नेतृत्व प्रदान कर सकता है। इस परिवर्तन का मौलिक उद्देश्य लोगों को अपनी जड़ों से जुड़े रहने और स्वस्थ जीवनशैली अपनाने के लिए प्रेरित करना है जो स्थानीय संसाधनों और परंपरागत ज्ञान पर आधारित हो।

कर्तव्यों के पालन से ही एक स्वस्थ एवं नागरिक समाज का निर्माण हो सकता है। नागरिक कर्तव्यों के अंतर्गत मतदान करना, करों का भुगतान करना, सार्वजनिक संपत्ति की संरक्षा करना, कानून का पालन करना और सामाजिक कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेना सम्मिलित है। एक जिम्मेदार, कर्तव्यनिष्ठ एवं उत्तरदायी नागरिक ही प्रगतिशील राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।

संघ के शताब्दी वर्ष में 'पंच परिवर्तन' की महान उपादेयता हैं। यह संघ के भविष्य की कार्य योजना का महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य संगठन को मजबूती प्रदान करना एवं समाज को एक नवीन दिशा प्रदान करना है। ●

(लेखक अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, दिल्ली झंडेवालान के राष्ट्रीय संगठन सचिव हैं। और ये इनके अपने विचार हैं)

बुद्ध पूर्णिमा की हार्दिक शुभकामनाएं

II Radha Swami II

Rajkumar +919810570832

OM JEWELLERS

Gold ● Silver ● Diamond ● GEMS ● & Hallmark Jewellery

A-1/54, Hastsal Road, Uttam Nagar, New Delhi PIN-110059,

● omjwlrs@gmail.com

तुष्टिकरण और उग्र आस्था दोनों एक से खतरनाक

घनश्याम बादल
वरिष्ठ स्तंभकार

आखिर वही हुआ जिस बात का डर था। संसद ने दोनों सदनों में बहुमत की मोहर लगने के साथ वक्फ संशोधन बिल कानून में तो बदल गया लेकिन जिस तरह एक सांसद ने कहा था कि मुस्लिम समाज इस बिल को कानून के रूप में स्वीकार नहीं करेगा और कुछ प्रतिक्रियावादी नेता इस पर बयान दे रहे थे तो यह तो तय था कि कानून बनने के बावजूद इसके खिलाफ वह अदालत में जाएंगे और वह गए भी। एक दो नहीं बल्कि देशभर से इस कानून की खिलाफत करते हुए और इसे वक्फ बोर्ड के अधिकारों पर डाका डालने वाला बताते हुए या फिर मुस्लिम संप्रदाय के धार्मिक अधिकारों में अनुचित हस्तक्षेप बताते हुए एक दो नहीं अपितु 120 जनहित याचिकाएं उच्चतम न्यायालय में दायर की गई। यह इस बात का संकेत देने की कोशिश है कि यदि सरकार मनमाने तरीके से कानून बनाएगी, तो हम भी मनमाने तर्क गढ़कर प्राप्त अधिकारों का उचित-अनुचित प्रयोग करते हुए प्रतिरोध करेंगे।

सरकार समर्थकों का मानना है कि वक्फ बोर्ड के मनमर्जी करने वाले अधिकारों पर कुल्हाड़ी चलते ही कुछ खास लोग बिलबिल उठे। यदि कहा जाए कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वक्फ बोर्ड के तथाकथित मालिकों को लगा कि अब उनके पर कतर दिए गए हैं तो इधर-उधर के तर्क गढ़कर जिनमें से कुछ उचित भी कहे जा सकते हैं न्यायालय की शरण में पहुंच गए, यहां तक इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है क्योंकि भारतीय संविधान हर व्यक्ति संस्था या धर्म को अपने संवैधानिक अधिकारों की रक्षा का अधिकार देता है।

भारत के दो जाने-माने वकीलों या कहिए कि वकील से अधिक नेता कैसे-कैसे तर्क लेकर न्यायालय में आए, वह एक दुख एवं हंसी दोनों का सबब है। ये दोनों वकील शायद स्वर्गीय राम जेठमलानी के बाद के ऐसे सबसे अधिक चर्चित वकील हैं, जो किसी भी ऐसे विवादास्पद मुद्दों पर तुरंत हाज़िर होते हैं। और संविधान की खामियों का फायदा उठाते हुए न केवल भारी भरकम फीस लेते हैं अपितु खुद को चर्चा में रखते हैं।

अगर संविधान की बात करें तो यह उनका अधिकार है लेकिन तर्क तक तो यह ठीक है। लेकिन भावनाएं संवेदनाएं बहुत सारी नैतिकताएं तथा आदर्श इस प्रक्रिया में मर जाते हैं।

वकील का काम है अपने मुवक्किल के पक्ष में हर तरह के तर्क पेश

करके उसे लाभ पहुंचाना है । कपिल सिब्बल एवं अभिषेक मनु सिंघवी तथा उनकी टीम ने यही किया, तो इसमें गलत क्या है? लेकिन जिस तरह से न्यायालय ने टिप्पणी की, वह चर्चाओं में है। हालांकि न्यायालय ने इस संबंध में कोई अंतिम फैसला नहीं सुनाया, बल्कि उसने सरकार को 5 मई तक सब्र करने की नसीहत देते हुए इस कानून की कुछ धाराओं पर रोक लगा दी। खुद सॉलिसिटर जनरल मेहता ने न्यायालय से एक सप्ताह का समय कुछ स्पष्टीकरण देने के लिए मांगा था। लेकिन मुख्य मुद्दा एवं चर्चा का विषय रहा 'वक्फ बाय यूजर' तथा गैर मुस्लिम सदस्यों की नियुक्ति पर यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश।

इस से पूर्व भी उच्चतम न्यायालय ने देश के सर्वोच्च पदधारक राष्ट्रपति एवं राज्यपालों को एक निश्चित समय अवधि में फैसला लेने का निर्देश भरा परामर्श देने का अचंभित करने वाला फैसला सुनाया था, जिसकी प्रतिक्रिया में उपराष्ट्रपति जगदीप धनखड़ ने जिस तरह न्यायपालिका को 'सुपर संसद' के रूप में काम करने वाली संस्था के रूप में व्याख्यित किया, वह भी विस्मयकारी है। इसमें दो राय नहीं कि भारतीय लोकतंत्र व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका का एक संतुलित समन्वयन है, जिसमें इन तीनों स्तंभों के दायरे सुपरिभाषित हैं। लेकिन पिछले कुछ समय से जैसे यह दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप करते दिख रहे हैं। यह लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं है। हालांकि अभी यह नहीं कहा जा सकता कि न्यायालय ने संसद के दायरे को पार किया है या नहीं! लेकिन इस निर्णय की वजह से कुछ चीजें तो उभर कर आई हैं। जैसे यदि व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका को एकाधिकारवादी नहीं माना जा सकता है, वैसे ही न्यायपालिका को भी आत्मावलोकन की आवश्यकता तो है। यदि हर भारतीय नागरिक न्यायपालिका के निर्णय से बंधा है, एवं उसके दायरे में आता है, तो फिर न्यायपालिका को भी अपना दायरा तय करना पड़ेगा। जिस तरह कुछ मुद्दों पर स्वतः संज्ञान लेकर न्यायालय कार्रवाई करता है, वैसे ही उसके जजों को भी इस दायरे में आना चाहिए। एक जज के भ्रष्ट आचरण की जांच दूसरा जज करे, यह बात हजम होने वाली नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे सांसद स्वयं बैठकर यह तय करें कि उन्हें कब और कितना वेतन बढ़ाना है।

यदि कोई अपराध करने पर किसी के भी खिलाफ एफ आई आर दर्ज की जा सकती है, तो फिर उसमें माननीय जजों को ही क्यों छोड़ा जाए? हालांकि ऐसा नियम बनने पर भी बहुत सारी पेंचीदगियां आएंगी। लेकिन हमें उनका तोड़ तो ढूंढना होगा। क्योंकि भारतीय लोकतंत्र में जब राष्ट्रपति तक भी स्वेच्छाचारी नहीं हो सकते, तब न्यायपालिका को भी यह अधिकार नहीं दिया जा सकता है।

जिस तरह आज अति उत्साही सोशल मीडिया एवं टीवी चैनलों पर अधकचरे विचारों को स्थान मिल रहा है, वह भी खतरनाक है। चैनलों, अखबारों एवं सोशल मीडिया मंचों की जिम्मेदारी तय करना बहुत जरूरी है। जैसे कभी अखबार में छपी हुई बात एक नजीर बन जाया करती थी, वैसे ही आम आदमी की नजर में टीवी एंकर की कही गई बात या सोशल मीडिया पर पोस्ट किए गए विचार बहुत मायने रखते हैं। और इससे वह कई बार दिग्भ्रमित भी होते हैं। इसमें भी यह है अकाउंटेबिलिटी तय करना जरूरी है कि बिना जांचे परखे एवं उसके क्या आफ्टर इफेक्ट होंगे, इसका जिम्मा व्यक्ति, चैनल या सोशल मीडिया मंच को लेना होगा।

इसमें दो राय नहीं कि लंबे समय तक देश में तुष्टिकरण का दौर चला और अब अंधभक्ति भरा उग्र आस्था का दौर जोर पकड़ रहा है। देश के दो बड़े संप्रदायों के बीच जितनी गहरी खाई इन दिनों देखी जा रही है, इससे पहले कभी नहीं थी। सही वह तुष्टिकरण का दौर भी नहीं था, और लंबे समय के लिए देखा जाए, तो यह उग्र धार्मिक उन्माद का दौर भी अच्छा सिद्ध होने वाला नहीं है। यदि भारत ने आजादी के बाद उल्लेखनीय प्रगति की है, तो उसमें बेशक सबका योगदान रहा है। और यहां शांति एवं सद्भाव के चलते ही विकास का एक बड़ा ढांचा खड़ा किया जा सका है। जरा सोचिए यदि एक तरफा झुकने का यह दौर लंबा चला तो फिर उसे नए, पुराने विकास का क्या होगा?

जिन देशों ने अशांति एवं युद्ध देखे हैं वहां के नागरिकों से पूछिए उसका परिणाम क्या होता है! अस्तु, इस संक्रमण काल में मुद्दे ही मुद्दे हैं, कुछ गरम मुद्दे, कुछ बहुत गर्म मुद्दे और उनकी गर्मी से राजनीतिक पार्टियां और सियासतदां फायदा भले ही उठालें लेकिन देश का भला होना मुश्किल है।

अतः बुद्धिजीवी वर्ग को खास तौर पर निष्पक्ष रहते हुए एवं भविष्य को ध्यान में रखते हुए आम आदमी तक बातें पहुंचाने में बहुत सावधानी बरतनी होगी। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

गुजरात एआईसीसी सत्र यानी मुख्य मुकाबले में बने रहने का मंथन

के. एस. तोमर
वरिष्ठ स्तंभकार

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने हाल ही में अपना एआईसीसी सत्र अहमदाबाद में आयोजित किया। यह फैसला केवल संयोग नहीं था, बल्कि एक सूक्ष्म राजनीतिक रणनीति का हिस्सा था। कांग्रेस ने ने सरदार पटेल की कर्मभूमि के भाजपा द्वारा

राष्ट्रीय प्रतीकों के 'अधिग्रहण' को चुनौती दी और पार्टी कैडर को आगामी चुनावी संघर्षों के लिए तैयार करने का प्रयास किया।

कांग्रेस यह संदेश देना चाहती है कि सरदार पटेल कांग्रेस के विचारों से बाहर नहीं, बल्कि उसकी आत्मा के प्रमुख स्थापक रहे हैं। यद्यपि एआईसीसी सत्र में नयापन और जोश नजर आया, लेकिन पार्टी के सामने कई गंभीर चुनौतियां हैं। इन चुनौतियों में राज्यों में कांग्रेस की राज्यस्तरीय संगठनात्मक संरचना का कमजोर होना व युवाओं से जुड़ाव की कमी है। दरअसल, पहली बार वोट देने वाले युवा अब भी बीजेपी की राष्ट्रवाद और आकांक्षी राजनीति से अधिक प्रभावित हैं। चुनौती यह भी कि पार्टी में राहुल गांधी की औपचारिक स्थिति अब भी स्पष्ट नहीं है। वहीं पार्टी अब तक इंडिया गठबंधन में शामिल तृणमूल, आप और सपा जैसे दलों के साथ मतभेदों का समुचित प्रबंधन नहीं कर पाई है। वहीं पार्टी भाजपा के हिन्दुत्व के ध्रुवीकरण के मुकाबले उदार हिंदू वोटर को आकर्षित नहीं कर पायी, जिससे अल्पसंख्यकों की सुरक्षा-विश्वास सुनिश्चित हो।

एआईसीसी सत्र में कांग्रेस ने बूथ-स्तर के अभियानों, भारत जोड़ो यात्रा 2.0, और युवा, ऊर्जावान सोशल मीडिया पहलों की घोषणा की। कांग्रेस का 'हाथ से हाथ जोड़ो' अभियान सीधे मतदाता से संपर्क साधने का प्रयास है। महिला कांग्रेस, युवा कांग्रेस और एनएसयूआई जैसे फ्रंटल संगठनों को फिर से सक्रिय करने का निर्णय लिया गया है।

गुजरात में कांग्रेस ने अपनी अलग पहचान को सामने रखा, मगर यह सत्र इंडिया गठबंधन में उसकी भूमिका को अनदेखा नहीं कर सका। राहुल गांधी ने स्पष्ट रूप से कहा कि कांग्रेस इस गठबंधन को एक सूत्र में पिरोने वाली कड़ी है और सीट बंटवारे को लेकर सम्मानजनक संवाद आवश्यक होगा। कांग्रेस ने साफ कर दिया कि वह गठबंधन राजनीति के लिए प्रतिबद्ध है, परंतु किसी भी स्थिति में दूसरे दर्जे की भूमिका स्वीकार नहीं करेगी। विशेष रूप से राजस्थान, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में, जहां उसकी मजबूत पकड़ है, वह अधिकतम सीटों पर चुनाव लड़ेगी। कांग्रेस का यह दृष्टिकोण–स्वतंत्र शक्ति के प्रदर्शन और साझा विपक्ष की एकता बनाए रखना–2029 के आम चुनाव तक संतुलन साधने की एक बड़ी परीक्षा होगा।

पिछले दो दशकों से भाजपा के गढ़ रहे गुजरात में एआईसीसी सत्र आयोजित करना कांग्रेस का साहसिक निर्णय था। वर्ष 2022 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस सिर्फ 17 सीटें जीत पाई थी। इस सत्र के जरिए पार्टी ने संकेत दिया कि वह वैचारिक जमीन छोड़ने को तैयार नहीं और उन क्षेत्रों में भी फिर से जड़ें जमाएगी।

यह केवल भौगोलिक नहीं, बल्कि विरासत की बात थी। कांग्रेस से जुड़े महात्मा गांधी और सरदार पटेल–दोनों महान स्वतंत्रता सेनानी–गुजरात से थे। पिछले एक दशक में भाजपा ने पटेल की छवि को हथियाने का भरपूर प्रयास किया है–उन्हें एक 'नजरअंदाज किए गए राष्ट्रवादी' के तौर पर पेश किया गया। 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' इसका प्रतीक है, मगर ऐतिहासिक तथ्य बताते हैं कि पटेल कांग्रेस के एक कट्टर नेता थे, नेहरू के घनिष्ठ सहयोगी और संवैधानिक लोकतंत्र के प्रबल पक्षधर।

राहुल गांधी ने याद दिलाया कि बतौर भारत के पहले गृहमंत्री, पटेल ने रियासतों के एकीकरण में अहम भूमिका निभाई थी–एक सेक्युलर और एकजुट भारत के निर्माणकर्ता के रूप में, न कि किसी हिन्दू राष्ट्रवादी के रूप में। संघ परिवार ने पटेल को नेहरू के वैचारिक प्रतिद्वंद्वी के रूप में पेश करने की जो कोशिश की है, उसे कांग्रेस ने तथ्यात्मक रूप से चुनौती दी। पटेल ने गांधी जी की हत्या के बाद आरएसएस पर प्रतिबंध लगाया और भारत के धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक ढांचे की नींव रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आयोजन के जरिए मल्लिकार्जुन खड़गे की अध्यक्षता ने पुराने और नए नेतृत्व के बीच संतुलन को दशार्या, वहीं राहुल और प्रियंका गांधी ने नई पीढ़ी का चेहरा पेश किया। सोनिया गांधी ने अपने संक्षिप्त भाषण में 'सत्य और धैर्य से संघर्ष' का संकल्प दोहराया। राहुल गांधी ने मुख्य भाषण में भावनात्मक और रणनीतिक दोनों ही पक्षों को जोड़ा। उन्होंने मोदी सरकार पर संस्थाओं के दुरुपयोग, लोकतंत्र की कमजोर पड़ती संरचना, बेरोजगारी, पूंजीवाद और असहमति की आवाज को दबाने जैसे मुद्दों को उठाया।

निस्संदेह, एआईसीसी सत्र केवल औपचारिकता नहीं था, बल्कि एक रणनीतिक पुनर्सरेखन था। सरदार पटेल की भूमि को चुनकर कांग्रेस ने भाजपा के 'राष्ट्रवाद के एकमात्र ठेकेदार' होने के दावे को खुली चुनौती दी।

अब कांग्रेस एक चौराहे पर खड़ी है–या तो इस जोश को जमीनी मेहनत में बदलकर वापसी का रास्ता बनाए, या फिर मोदी की चुनावी रणनीति के सामने धीरे-धीरे अप्रासंगिक हो जाए। एआईसीसी सत्र शुरूआत थी–मगर असली लड़ाई भारत के मतदाताओं के दिलों में लड़ी जाएगी। ●

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक हैं। ये इनकी अपनी दृष्टि है)

स्वस्थ, सुखी और अच्छे जीवन के मूलमंत्र

सुनील कुमार महला
वरिष्ठ स्तंभकार

कहते हैं कि जीवन-मरण ऊपर वाले (ईश्वर) के हाथ है। हाल ही में एक प्रतिष्ठित हिंदी दैनिक में राजस्थान के कोटा से एक खबर पढ़ने को मिली। दरअसल, राजस्थान के पाली का रहने वाला एक छात्र नीट की तैयारी कर रहा था और चाय पीते-पीते ही इस कोचिंग छात्र की मौत हो गई। बताया जा रहा है और दो साल पहले ही इस छात्र का हार्ट का ऑपरेशन हुआ था।इस खबर ने इस लेखक को विचलित किया और यह आलेख लिख रहा हूं। यह पहली खबर नहीं है जब हमें अचानक से किसी की मृत्यु की खबरें मिलतीं हैं। आज सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर, यू-ट्यूब, इंटरनेट, मीडिया में ऐसी खबरें लगभग लगभग आए दिन पढ़ने को मिलतीं रहतीं हैं कि फलां फलां व्यक्ति डांस करते, गाड़ी चलाते वक्त, स्कूल में पढ़ाते वक्त, यहां तक योग व कोई एक्सरसाइज करते वक्त मौत का शिकार हो गया। आखिर ऐसा क्या है जो आजकल अचानक ऐसी खबरें हमें पढ़ने-सुनने को मिल रही हैं, क्या यह सूचना क्रांति के विकास के कारण है कि हमें आज तेजी से ऐसी खबरें मिल रही हैं, क्या पहले भी ऐसा होता था, लेकिन हमें ऐसी खबरों के बारे में पता ही नहीं चल पाता था, क्यों कि मीडिया, सूचना क्रांति इस कद्र विकास के पायदानों पर नहीं थी।आज कोई ट्रेडमिल पर एक्सरसाइज करते हुए मृत्यु को प्राप्त हो रहा है तो कोई चक्कर खाकर कहीं गिर जा रहा है और मृत्यु को प्राप्त हो रहा है? आखिर इन सबके पीछे कारण क्या हैं ? क्या हम इसके लिए बढ़ते प्रदूषण, खान-पान या हमारी जीवनशैली को जिम्मेदार ठहरा सकते हैं ? यह सब सोचनीय है। कारण चाहे भी जो भी रहें हों लेकिन इतना जरूर तय है कि हमारे खान-पान, जीवनशैली और प्रदूषण के स्तर में तो जरूर परिवर्तन आए हैं। हालांकि, जीवन मृत्यु तो उस परमपिता परमेश्वर के हाथ है, लेकिन हम थोड़ी एहतियात तो अपने स्वास्थ्य को लेकर बरत ही सकते हैं।

विज्ञान और तकनीक ने निश्चित रूप से आज बहुत तरक्की की है। और आज हम आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) के दौर में जीवन जी रहे हैं लेकिन जीवन मृत्यु के रहस्य तो हमेशा रहस्य ही रहेंगे। बहरहाल, यह लेखक एक फेसबुक पोस्ट को पढ़ रहा था। यह फेसबुक पोस्ट कहीं न कहीं हमारे स्वास्थ्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। मसलन, आज हमें अपनी जीवनशैली में कुछ चीजों की ओर ध्यान देना चाहिए। जैसे कि आज हमें अपने खान-पान की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। हमें अपने भोजन से विशेषकर नमक, चीनी, ब्लीच किया हुआ आटा, डेयरी उत्पाद,प्रोसेस्ड खाद्य पदार्थ,

जंक व फास्ट फूड आदि के उपयोग को कम करना चाहिए और बिल्कुल सादा भोजन करना चाहिए।हरी सब्जियां, दालें, फलियां,मेवे, कोल्ड-प्रेस्ड तेल (जैतून, नारियल, आदि) तथा फल आदि हमारे जरूरी आहार होने चाहिए।

आज की जीवनशैली में हम हरदम भागम-भाग जिंदगी जीते हैं। न प्रकृति का सानिध्य और न ही अपनो संग हंसना-खेलना।वर्चुअल वर्ल्ड की दुनिया में हम रच-बस से चुके हैं। हम वास्तविक दुनिया से परे हैं। आज प्रतिस्पर्धा का दौर है, हर तरफ कड़ी प्रतिस्पर्धा है, हम धन की ओर, पदार्थ की ओर निरंतर भाग रहे हैं, न हमारे पास स्वयं के लिए ही समय बचा है और न ही दूसरों के लिए। आज हम मुस्कुराते भी हैं तो हमारी मुस्कुराहट ऊपरी होती है। हम मुस्कुराहट का दिखावा सा करते नजर आते हैं। हम भीतर से, अपने अंतर्मन से कभी नहीं मुस्कुराते। हम खुश हो सकें, हमेशा दिल खोलकर बात कर सकें, हमारा मन हमारी आत्मा संकुचित न हो, हम सभी प्रेम और प्यार से रह सकें, हममें हमेशा खुशी की चमक-दमक हो। सच तो यह है कि हमारी मुस्कराहट ऊपर की बिल्कुल भी न हो, यह भीतर से आनी चाहिए। ऊपर से तो हम अक्सर मुस्कराते ही हैं, खुशी का आविर्भाव हमेशा आंतरिक होना चाहिए। हमें अपने जीवन में तीन चीजें भूलने की कोशिश करनी चाहिए। मसलन, हमारी उम्र, हमारा अतीत और हमारी शि-ाकायतें। हमारे में जिजीविषा का गुण होना चाहिए। जिजीविषा मतलब जीवन जीने के प्रति ललक, उत्साह।

जीने की प्रबल और सकारात्मक इच्छा ही जिजीविषा है। आज हम तनाव और अवसाद में, नकारात्मक विचारों में खोए-खोए से रहते हैं। न जाने किस बात की चिंता हमें होती है ? जिजीविषा जीवन के प्रति हमारे गहरे जुनून, चुनौतियों के बावजूद जीने की तीव्र इच्छा को दर्शाती है।इस संदर्भ में हम जापानी लोगों से सीख सकते हैं। वास्तव में जापानी लोगों की लंबी उम्र का रहस्य उनकी सक्रिय जीवनशैली, स्वस्थ आहार, और समुदाय के प्रति जुड़ाव में है। वे लोग अपने दैनिक जीवन में शारीरिक गतिविधियों को शामिल करते हैं-जैसे, पैदल चलना, साइकिल चलाना, और पारंपरिक नृत्य वगैरह-वगैरह। उपलब्ध जानकारी के अनुसार जापानी लोग अपनी डाइट में सी फूड, सोयाबीन, और ग्रीन टी को शामिल करते हैं। सी फूड में ओमेगा-3 फैटी एसिड होता है, जो दिल को स्वस्थ रखने में मदद करता है।सोयाबीन में पोषक तत्व होते हैं, जो कैंसर से लड़ने में मदद करते हैं। ग्रीन टी में भी कई स्वास्थ्य लाभ होते हैं। इतना ही नहीं, हमें अपने जीवन में कुछ जरूरी चीजों को संजोकर रखना चाहिए। मसलन, अपना परिवार, अपने मित्र, अपने सकारात्मक विचार और स्वच्छ और सुखद घर। संस्कृत में मित्रों के बारे में क्या खूब कहा गया है-'पापान्निवारयति योजयते हिताय, गुह्यं निगूहति गुणान प्रकटीकरोति, आपद्गतं च न जहाति ददाति काले, सन्मित्रंलक्षणमिदं प्रवदन्ति विज्ञानः।' यह ठीक है कि जीवन-मरण तो ऊपर वाले के हाथ हैं, लेकिन हमें अपने जीवन में तीन आदतें जरूर अपनानी चाहिए। मसलन, हमें हमेशा खुलकर मुस्कुराना/ हँसना चाहिए। हमें अपनी गति से नियमित शारीरिक गतिविधि करनी चाहिए। टहलना चाहिए। अपने वजन को नियंत्रित रखना चाहिए। प्रकृति के सानिध्य में जीवन बिताने का प्रयास करना चाहिए। खुला आसमान, बहते झरने, कल-कल करती नदियां, पक्षियों की कलरव, प्राकृतिक हरितिमा हमें अभूतपूर्व खुशियां प्रदान करतीं हैं। इतना ही नहीं, हमें छह आवश्यक जीवनशैली आदतों को भी अपनाना चाहिए। मसलन, प्यास लगने का इंतजार नहीं करना चाहिए, और पानी पीते रहना चाहिए। विज्ञान भी यह बात मानता है कि एक वयस्क व्यक्ति के शरीर में पानी का प्रतिशत करीब 60% होता है, इसलिए हाइड्रेटेड रहना बहुत ही महत्वपूर्ण और आवश्यक है। अक्सर हम थकान होने का इंतजार करते हैं, और समय पर आराम नहीं करते हैं। आराम बहुत आवश्यक है। कम से छह से आठ घंटे की नींद स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है। नियमित चिकित्सा जांच भी जरूरी है। हमें यह चाहिए कि हम चमत्कार की प्रतीक्षा न करें, लेकिन ईश्वर पर विश्वास रखें, क्यों कि इस सृष्टि को कोई न कोई शक्ति ही चलायमान रखें हुए है। हमें यह चाहिए कि हम कभी भी किन्हीं भी परिस्थितियों में खुद पर विश्वास कभी न खोएं। जीवन फूलों की सेज नहीं है, यहां हर पल संघर्ष हैं, परेशानियां हैं, दिक्कतें हैं, लेकिन संघर्ष ही तो असली जीवन है। अंत में यही कहूंगा कि हम जीवन में हरदम,हरपल सकारात्मक रहें और हमेशा बेहतर भविष्य की आशा रखें। सफल, स्वस्थ व अच्छे जीवन का यही मूलमंत्र है। ●

बेटियों की सुरक्षा पर सवाल

शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, थाना और तहसील जैसे पांच संस्थानों की विफलता गंभीर चिंता का विषय है। शिक्षा अब ज्ञान नहीं, कोचिंग और फीस का बाजार बन चुकी है। स्वास्थ्य सेवाएँ निजीकरण की भेंट चढ़ चुकी हैं, जहां इलाज से ज्यादा पैकेज बिकते हैं। चिकित्सा व्यवस्था मुनाफाखोरी का अड्डा बन गई है। थाने न्याय की जगह रिश्वत का केंद्र और तहसील एक कागजी भूलभुलैया बनकर रह गई है। इन संस्थाओं को सुधारने की जरूरत हैं।

प्रियंका सौरभ
स्तंभकार

पढ़ी-लिखी लड़कियों को यौन शोषण और ब्लैकमेलिंग के मामलों में इतनी आसानी से कैसे फंसने दिया जाता है? यह सवाल अक्सर तब पूछा जाता है, जब मीडिया में किसी लड़की के साथ यौन शोषण या ब्लैकमेलिंग का मामला सामने आता है। लेकिन यह सवाल गलत है। सही सवाल यह होना चाहिए कि वह फंसी नहीं, फंसाई गई—एक साजिश, एक शोषण तंत्र और एक चुप्पी के गठजोड़ द्वारा। इस मामले में केवल लड़की दोषी नहीं, बल्कि वह समाज और सिस्टम भी दोषी है, जिसने उसे सुरक्षित और संवेदनशील बनाने के बजाय सिर्फ ३संभल कर रहने३ की शिक्षा दी।

अजमेर कांडः एक काला अध्याय

अजमेर का नाम जब भी यौन शोषण और ब्लैकमेलिंग के मामलों में लिया जाता है, तो 1992 में हुए गैंगरेप कांड का जिक्र जरूरी हो जाता है। उस समय के अजमेर गैंगरेप कांड ने पूरे देश को झकझोर दिया था, जब राजनीतिक और धार्मिक रसूख वाले लोग, और खासकर ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह से जुड़े लोग, हजारों स्कूल और कॉलेज छात्राओं को फंसा रहे थे। पहले तो उन्हें प्यार के जाल में फंसा कर, फिर उनकी अश्लील तस्वीरें खींच कर, उन्हें ब्लैकमेल किया गया। इस कांड के कारण कई लड़कियों ने आत्महत्या तक कर दी थी।

लेकिन अब, 30 साल बाद, एक बार फिर अजमेर में वैसा ही मंजर सामने आया है। इस बार सोशल मीडिया, इंस्टाग्राम चैट, फर्जी प्रोफाइल और वीडियो के जरिए सैंकड़ों छात्र-ाओं को ब्लैकमेल किया गया है। पुलिस ने कई लड़कों को गिरफ्तार किया है, जिनमें नाबालिग भी शामिल हैं।

क्या बदला इन तीन दशकों में?

30 साल पहले की तुलना में आजकल लड़कियों की शिक्षा और जागरूकता के स्तर में जरूर बदलाव आया है, लेकिन क्या आज भी हमें यह लगता है कि अजमेर जैसी घटनाओं को टाला जा सकता था? क्या हम लड़कियों को पूरी तरह से सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त कदम उठा पा रहे हैं? क्या आज भी स्कूल और कॉलेजों में सुरक्षा के बारे में गहरे सवाल नहीं खड़े होते?

परवरिश की खामोश पटरियां

अक्सर जब कोई लड़की यौन शोषण का शिकार होती है, तो यह सवाल उठता है कि उसने यह क्यों होने दिया? क्या उसका कोई दोष था? लेकिन असलियत यह है कि जब लड़कियों को बचपन से ही यह शिक्षा दी जाती है कि 'लड़कों से दूर रहो' या 'तुमसे गलती हो सकती है', तो वे इस डर में बड़ी होती हैं कि अगर कुछ हुआ तो कौन उनका साथ देगा? यही डर और चुप्पी उन्हें अपराधियों का शिकार बना देती है। अगर उन्हें यह सिखाया जाए कि 'यह तुम्हारी गलती नहीं है, तुम सुरक्षा की हकदार हो, और तुम्हें मदद मांगने का अधिकार है,' तो शायद वे इन स्थितियों से उबर पातीं।

शिक्षा संस्थानः किताबें हैं, करुणा नहीं

हमारे स्कूल और कॉलेज अब केवल शैक्षिक संस्थान बनकर रह गए हैं, जहां शिक्षा का केवल एक ही उद्देश्य होता है—अंकों के आधार पर परिणाम प्राप्त करना। इन्हीं संस्थानों में न तो कोई यौन शिक्षा होती है, न लैंगिक संवेदनशीलता के बारे में कक्षाएं होती हैं, और न ही कोई मानसिक स्वास्थ्य काउंसलिंग की सुविधा। लड़कियों को न केवल आत्मरक्षा की शिक्षा की जरूरत है, बल्कि उन्हें यह समझने की भी जरूरत है कि प्यार और रिश्तों में शोषण के क्या संकेत हो सकते हैं। जब लड़कियों की

शिकायतों पर यह प्रतिक्रिया मिलती है, 'तुमने ही कुछ किया होगा, तब उसने वीडियो बनाया,' तो यह समस्या की गंभीरता को नजरअंदाज करने जैसा है।

सोशल मीडियाः आधुनिक शिकारी की बंदूक

सोशल मीडिया और चैटिंग ऐप्स ने अपराधियों के लिए नए रास्ते खोल दिए हैं। अजमेर के नए मामले में जो हुआ, वह आधुनिक डिजिटल शिकारी के रूप में सामने आया। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स जैसे इंस्टाग्राम, स्नैपचैट और व्हाट्सएप का उपयोग करके पहले झूठे प्रेम संबंध बनाए जाते हैं, फिर इंटिमेट चैट्स और वीडियो बनाए जाते हैं, और अंत में ब्लैकमेलिंग और शोषण की प्रक्रिया शुरू होती है। इसमें सबसे बड़ी समस्या यह है कि लड़कियां इन प्लेटफॉर्म्स पर भावनात्मक रूप से अस-ुरक्षित होती हैं। वे इन्हें एक सुरक्षित, गुप्त रिश्ते के रूप में देखती हैं, और फिर अपराधी उनका विश्वास तोड़ते हैं।

समाज का दोगलापन

जब लड़कियां पढ़ाई में अव्वल होती हैं, तो उन्हें सराहा जाता है। लेकिन जैसे ही वे किसी लड़के से दोस्ती करती हैं, या सोशल मीडिया पर सक्रिय होती हैं, उन्हें 'आवारा' और 'बिगड़ी हुई' करार दे दिया जाता है। अजमेर जैसी घटनाओं के बाद समाज यही सवाल करता है–'तुमने ही क्यों भरोसा किया?' जब कि यह सवाल उल्टा होना चाहिए–'तुम्हारे स्कूल और कॉलेज में सुरक्षा तंत्र कहां था?'

हमारे समाज में लड़कियों को केवल एक दिशा में ही शिक्षित किया जाता है, वह है, ॠसंभल कर रहोॠ। लेकिन क्या लड़कियों को यह भी सिखाया गया है कि वे अपने अधिकारों की रक्षा कैसे कर सकती हैं? क्या हमें यह समझने की जरूरत नहीं कि लड़कियों को 'अपने बचाव' के लिए तैयार करना केवल उनका व्यक्तिगत जिम्मा नहीं, बल्कि पूरे समाज का जिम्मा है?

पुलिस और प्रशासन की चुप्पी

कभी 1992 में अजमेर गैंगरेप कांड के समय पुलिस और प्रशासन ने राजनीतिक दबाव के कारण मामले को दबा दिया था। अब भी वही हो रहा है–कई आरोपियों के नाम सामने नहीं आ रहे हैं, और नाबालिगों को किशोर न्याय कानून का सहारा मिल रहा है। क्या यही वह सिस्टम है, जिस पर हमें भरोसा करना चाहिए? जब पुलिस और प्रशासन चुप रहते हैं, तो शोषण और बलात्कार की घटनाओं को दबा दिया जाता है। यही हाल आजकल के कॉलेजों और स्कूलों में भी हो रहा है, जहां सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं है।

अजमेर और कोटा जैसे मामलों में यह भी सामने आया कि लड़कियों को सोशल मीडिया, चैटिंग ऐप्स, फर्जी प्रोफाइल के जरिए जाल में फँसाया गया। जब ऑनलाइन संवाद शुरू होता है, तो वह एक ॠगोपनीय रिश्ताॠ जैसा लगने लगता है। इसी भरोसे का शोषण होता है।

किसी लड़की का विश्वास करना, प्रेम में पड़ना या किसी से बात करना अपराध नहीं है। अपराध तब होता है जब कोई इस भरोसे का बलात्कार करता है, ब्लैकमेल करता है, और उसे अपमान में जीने पर मजबूर करता है। ऐसे मामलों में हमें पीड़िता को दोष नहीं देना चाहिए, बल्कि यह पूछना चाहिए कि उस कॉलेज में सुरक्षा तंत्र कैसा था? स्कूल प्रशासन को क्यों नहीं पता चला? पुलिस और प्रशासन ने पहले की घटनाओं से क्या सीखा?

समाधान क्या हो?

समाधान केवल एक दिशा में नहीं आ सकता। इसके लिए हमें शिक्षा प्रणाली, समाज, पुलिस और प्रशासन, और मीडिया को हर स्तर पर जागरूक करना होगा। सबसे पहले, हमें यौन शिक्षा को स्कूल पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से शामिल करना होगा। कॉलेजों में काउंसलिंग और डिजिटल सुरक्षा प्रशिक्षण दिया जाए। हर जिले में महिलाओं के लिए साइबर हेल्पलाइन और त्वरित कार्रवाई इकाई की स्थापना होनी चाहिए। इसके साथ ही, मीडिया को पीड़िता को दोषी ठहराने से रोकना होगा और पुराने मामलों की निष्पक्ष जांच होनी चाहिए।

अजमेर की छात्राएं पढ़ी-लिखी थीं, लेकिन वे सामाजिक चुप्पियों और डिजिटल खतरों से अनजान थीं। हमें यह स्वीकार करना होगा कि शिक्षा सिर्फ डिग्री नहीं, सुरक्षा भी सिखाए। और परवरिश सिर्फ आज्ञाकारी बनाने के लिए नहीं, संघर्षशील और सचेत नागरिक बनाने के लिए होनी चाहिए।

हमारी बेटियां फंसती नहीं हैं, फंसाई जाती हैं–और जब तक शिक्षा सिर्फ अंकों तक सीमित रहेगी, ये शिकारी जाल बार-बार बुने जाते रहेंगे।

विनाश के पाँच तोपः शिक्षा से तहसील तक

शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, थाना और तहसील जैसे पांच संस्थानों की विफलता गंभीर चिंता का विषय है। शिक्षा अब ज्ञान नहीं, कोचिंग और फीस का बाजार बन चुकी है। स्वास्थ्य सेवाएँ निजीकरण की भेंट चढ़ चुकी हैं, जहां इलाज से ज्यादा पैकेज बिकते हैं। चिकित्सा व्यवस्था मुनाफाखोरी का अड्डा बन गई है। थाने न्याय की जगह रिश्वत का केंद्र और तहसील एक कागजी भूलभुलैया बनकर रह गई है। इन संस्थाओं को सुधारने की जरूरत हैं। ●

मुसलमानों के हक में है नया वक्फ संशोधन कानून

जब वक्फ संशोधन बिल संयुक्त संसदीय समिति को अगस्त 2024 में विचारार्थ भेजा गया था, तब से ही न केवल इसका विरोध चरम पर पहुंच गया था, बल्कि प्रस्ताव को खारिज कराने के लिए विपक्ष का सारे प्रयत्नों के साथ मुसलमानों को भड़काने का काम जारी हो गया था। विपक्ष को लग रहा था कि टीडीपी और जेडीयू या लोक जनशक्ति (रा) या रालोद अपने मुस्लिम वोटों की नाराजी से बचने के लिए इस बिल का समर्थन नहीं करेंगे। लेकिन यह उल्लेखनीय तथ्य है कि 2014 या 2019 में जो भी बिल आए उनमें लोकसभा में भाजपा को बहुमत होने के कारण इस सदन में स्वीकृत होने में कोई परेशानी नहीं हुई थी लेकिन इन दोनों कार्यकाल में राज्यसभा में बहुमत न होने के बाद भी बिलों का पास होना यह साबित करता है कि जिन राजनीतिक दलों ने राज्यसभा में समर्थन किया और कानून बनाने में मदद की वे इन बिलों के लोकहित में होने में कभी भ्रमित नहीं हुए। ये दल जानते थे कि मोदी जो काम कर रहे हैं वह आम जनता की भलाई के लिए ही कर रहे हैं। ठीक इसी तरह अभी-अभी जो वक्फ बिल संसद में पास हुआ उसके संबंध में तो इस आशंका से किसी को इंकार नहीं हो सकता था कि विपक्ष के जो दल टीडीपी और जेडीयू सरकार के साथ हैं यदि वह भी मुस्लिम तुष्टिकरण के जाल में फंस गए होते तो यह बिल लोकसभा में 232 के मुकाबले 288 वोटो से पास ना होता इसी तरह राज्यसभा में भी यह बिल 95 के मुकाबले 128 मतों से पास नहीं होता। इस बिल पर इंडी गठबंधन के सदस्य दलों का विरोध चरम पर था और वह चाहते थे कि टीडीपी और जेडीयू भी इस बिल का विरोध कर इसे पास न होने दें। हालांकि यह दोनों दल मुस्लिम वोटो का समर्थन पाने वाले दल ही हैं लेकिन ये जानते ही नहीं मानते भी हैं कि वक्फ

डा हरिकृष्ण बड़ोदिया
वरिष्ठ लेखक एवं स्तंभकार

संशोधन से आम गरीब, मजलूम मुसलमानों को फायदा होने वाला है। जो पैसे वाले संभ्रांत और रसूखदार मुसलमान हैं, वह इसका विरोध इसलिए कर रहे हैं कि उन्होंने कई बहुमूल्य संपत्तियों पर आधिपत्य जमा रखा है। इन लोगों ने कौड़ी मोल किराए पर करोड़ों की संपत्ति 100 साल के लिए लीज पर ले रखी है और कई रसूखदारों ने अरबों रुपयों की संपत्ति न्यूनतम दामों पर लेकर मॉल और फाइव स्टार होटल बनाकर अपना मुस्तकबिल पुख्ता किया है। इससे उन गरीब मुसलमानों का कोई भला नहीं हुआ, जिनके नाम पर कोई संपत्ति वक्फ की जाती है। ये सक्षम मुसलमान सही मायनों में गरीबों का हक छीनने वाले राजनीतिक मुसलमान हैं। लेकिन वक्फ संशोधन कानून 2025 अब ऐसा होने नहीं देगा।

यही एक चिंता है जो संपन्न मुसलमानों, मौलवियों और धर्म के ठेकेदारों को खाए जा रही है इसलिए इस कानून का यह कहकर कि यह कानून मुसलमानों की मस्जिद तोड़ेगा, दरगाहें तोड़ेगा और कब्रिस्तान की जमीनें छीन लेगा भोले और कमजोर मुसलमानों को भड़का रहे हैं। जबकि सच्चाई यह है कि अस्तित्व में आए नए कानून से उन्हें अवैध कब्जाई संपत्तियों से हाथ धोना पड़ सकता है। वहीं दूसरी ओर जो राजनीतिक दल चाहे वह कांग्रेस हो या सपा या तथाकथित सेकुलर छोटी-छोटी विपक्ष की पार्टियां हों वे इसलिए विरोध कर रही हैं कि अमीर मुसलमान और मौलवियों को अपने पक्ष में कर वे गरीब मुसलमानों को फतवा दिलवा कर वोट पाती हैं। ये पार्टियों डरी हुई हैं कि अब गरीब मुसलमान कहीं मोदी के पक्ष में खड़ा ना हो जाए। यही कारण है कि इन दलों ने बिल का पुरजोर विरोध किया।

सच्चाई तो यह है कि आम मुसलमान को अपनी उंगली पर नचाने वाले रसूखदार मुसलमान इस कानून के आने से बिलबिला रहे हैं। ये पूरे मुस्लिम समाज को यह कहकर भ्रमित कर रहे हैं कि सरकार मुसलमानों की जमीन हड़पना चाहती है। हमारी मस्जिदों को तोड़ दिया जाएगा। मुसलमानों को जमीन से बेदखल कर दिया जाएगा। भड़काया जा रहा है कि मुसलमानों के धार्मिक अधिकारों को छीनने की कोशिश की जा रही है। इस सब का जवाब देते हुए गृहमंत्री ने दो टूक कहा कि मुसलमानों के हित की अनदेखी किसी भी कीमत पर नहीं होगी। सच्चाई यह है कि यह कानून मुसलमानों की 80 प्रतिशत से अधिक आबादी के आर्थिक हितों का संरक्षण करेगा। इस कानून का उद्देश्य धार्मिक अधिकारों में दखल नहीं, बल्कि गरीब मजलूम और अमन पसंद मुसलमानों को उनके हिस्से का हक दिलवाने के लिए है, जिन संपत्तियों पर राजनीतिक मुसलमान कुंडली मारकर बैठे हैं। आम मुसलमानों को समझना होगा कि मोदी सरकार ने अपने फायदे के लिए वक्फ कानून में संशोधन नहीं किया, बल्कि आम मुसलमानों के फायदे के लिए किया है। यह कानून जिन लोगों ने वक्फ की जमीन पर अवैध रूप से कब्जा कर रखा है, जो उसकी संपत्ति से होने वाली आय पचा जाते हैं, यह कानून ऐसे भ्रष्टाचारियों पर अंकुश लगाने के लिए है, जो गरीब मुस्लिम तबके के हकों को लूटते हैं। जो राजनीतिक मुसलमान कानून के विरोध में चिल्ला चिल्ला कर देश के सारे मुसलमानों को भड़का रहे हैं, उन्हें इनकी रणनीति को समझना होगा। यह विरोध सामान्य मुसलमानों के हितों के लिए नहीं बल्कि रसूखदारों के हित के लिए किया जा रहा है। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

वक़्फ और वक़्फ बोर्ड

पंकज गांधी जायसवाल
स्तंभकार

वक़्फ और वक़्फ बोर्ड दो अलग अलग चीजे हैं लेकिन विमर्श के दौरान इसे एक में घालमेल हो जाने से जनता और आम मुसलमान गुमराह हो जा रहें हैं। चूंकि बहुत से लोग डिटेल और तकनीकी स्तर पर नहीं जा पाते तो वो अक्सर इन सतही विमर्शों के जाल में फंस जाते हैं। यह मसला धार्मिक के साथ साथ आर्थिक विमर्श का भी विषय है. आइये आज हम इन दोनों को समझते हैं।

वक़्फ एक इस्लामिक व्यवस्था है, जो कि एक दान की गई संपत्ति या धर्मार्थ ट्रस्ट होता है, जबकि वक़्फ बोर्ड एक सरकारी व्यवस्था है। वक़्फ में सरकार या व्यवस्था कोई बदलाव नहीं कर सकती क्योंकि इसकी उत्पत्ति, व्यवस्थापन और निष्पादन इस्लामिक नियमों से होता है। वहीं वक़्फ बोर्ड चूंकि सरकार ने बनाया है, इसलिए यह सरकार की प्रणालियों के अधीन होता है।

वक़्फ एक इस्लामिक धर्मार्थ संस्था है, जिसमें एक व्यक्ति अपनी संपत्ति या जमीन को धार्मिक या सामाजिक भलाई के लिए स्थायी रूप से दान कर देता है। यह संपत्ति फिर किसी खास उद्देश्य के लिए हमेशा के लिए नियत हो जाती है। और उसे बेचा या व्यक्तिगत उपयोग के लिए नहीं लिया जा सकता। मसलन किसी ने एक मस्जिद, कब्रिस्तान, स्कूल या अस्पताल के लिए जमीन वक़्फ कर दी। वहीं वक़्फ बोर्ड एक सरकारी व्यवस्था है जो वक़्फ की गई संपत्तियों का प्रबंधन करता है। इसका गठन वक़्फ अधिनियम के तहत हुआ है और हर राज्य का अपना एक वक़्फ बोर्ड है।

इसके मुख्य कार्य में वक़्फ जिन इस्लामिक उद्देश्यों के लिए दानदाताओं ने किया है, उसका पालन मुतवल्लियों के जरिए किया जा रहा है या नहीं, इसे सुनिश्चित करना होता है, जिसमें शामिल है वक़्फ संपत्तियों का रिकॉर्ड रखना, उनकी सुरक्षा और देखभाल सुनिश्चित करना। और किसी भी प्रकार की अनियमितता या वक़्फ के उद्देश्यों एवं संपत्तियों पर हो रहे अतिक्रमण को रोकना।

वर्तमान में वक़्फ सुधार बिल के कुछ प्रावधानों की चर्चा यहां करना चाहता हूं कि कैसे वह वक़्फ को लेकर इस्लामिक मूल सिद्धांतों को और मजबूत और इसकी रक्षा करने वाला है। जैसे मुतवल्ली को लीजिए। मुतवल्ली वक्फ संपत्ति का प्रबंधक या संरक्षक

होता है। यह व्यक्ति वक़्फ संपत्ति की देखभाल और प्रबंधन के लिए जिम्मेदार होता है। इसकी नियुक्ति मौखिक नहीं होनी चाहिए अन्यथा यह गफलत, विवाद और साजिश का आधार हो सकता है। और वक़्फ की सम्पत्तियों और इसके उद्देश्यों पर खतरा आ सकता है। पुराने वक़्फ कानून में इसके मौखिक नियुक्ति का प्रावधान था। वर्तमान सुधार बिल में मौखिक नियुक्ति के प्रावधान को हटाया गया है। मेरी नजर में यह कालसुसंगत व न्यायसंगत है। और गफलत, विवाद और साजिश की आशंकाओं को खत्म करने वाला है।

दूसरा, पुराने वक़्फ कानून में कोई भी भी व्यक्ति वक़्फ के लिए अपनी संपत्ति का दान करता है। 'कोई भी व्यक्ति' शब्द व्यापक तौर पर सभी गैर मुस्लिमों और सरकार को भी शामिल कर लेता है, जबकि वक़्फ इस्लामिक व्यवस्था है। और मुसलमानों पर लागू होने के लिए बनाई गई है। इसलिए मेरे विचार से चूंकि वक़्फ मुस्लिम कानून के तहत दान दी गई संपत्तियों के प्रबंधन के लिए है, इसलिए इसके तहत वक़्फ में मुस्लिम की दान में दी गई संपत्तियों का ही नियम रखना काल सुसंगत और न्यायसंगत होगा। यह इसके दुरूपयोग को रोक कर मुस्लिम धर्म की मूल भावना की रक्षा करेगा।

वर्तमान सुधार बिल में वक़्फ करने वाले की पहचान प्रैक्टिसिंग मुस्लिम करना और उनका पिछले 5 सालों से प्रैक्टिसिंग मुस्लिम होना हालांकि वक़्फ के दुरूपयोग को रोक सकता है लेकिन मेरा मत है कि भविष्य के काल अवधि में यहां प्रैक्टिसिंग मुसलमान शब्द एक भ्रम की स्थिति पैदा कर सकता है। सरकार सिर्फ मुस्लिम शब्द का प्रयोग करे, तो भविष्य में परिभाषा और इसके लागू होने पर भ्रम नहीं होगा।

तीसरा, पुराने वक़्फ के कानून में वक़्फ करने वाला संपत्ति का मालिक होना चाहिए जैसी कोई शर्त नहीं थी। मेरे हिसाब से होनी चाहिए थी। जिस संपत्ति के आप मालिक नहीं हैं, उसे आप किस हक से दान कर सकते हैं? वर्तमान सुधार बिल में यदि कोई संपत्ति वक़्फ करना चाहता है, तो सबसे पहले उसके पास ऐसा करने के लिए उस संपत्ति का कानूनी मालिकाना हक होना चाहिए। यह एक युक्तिसंगत सुधार है। मुझे लगता है कि वक़्फ संसोधन का यह सबसे महत्वपूर्ण कदम होगा। यह वक़्फ और इस्लाम की मूल भावना की रक्षा कर मालिकाना हक वाले स्वैच्छिक दान की रक्षा करने वाला होगा। और यह वक़्फ को गफलत, विवाद, कब्जे और साजिश जैसे विवादों से रक्षा करेगा।

चौथा, मेरे मत में वक़्फ बोर्ड खुद में एक 'पब्लिक ट्रस्ट' नहीं है। यह एक वैधानिक नियामक संस्था है, ठीक वैसे ही जैसे चैरिटी कमिश्नर ट्रस्टों की निगरानी करता है। जैसे आजम खान कुम्भ मेला के प्रभारी मंत्री थे, यह प्रशासनिक व्यवस्था थी। वैसे ही यह वक़्फ बोर्ड है। यह सरकार की बनाई गई प्रशासनिक व्यवस्था है। कभी-कभी एक विशेष परिस्थिति आती है, जब वक़्फ बोर्ड प्रशासनिक व्यवस्था के अलावा खुद वक़्फ संपत्तियों का मैनेजर भी बन सकता है, लेकिन यह विशेष परिस्थितियों में अल्पकाल की अंतरिम व्यवस्था है, जब किसी वक़्फ में ट्रस्टी ना हो या ट्रस्टी निष्क्रिय हो। लेकिन यह अंतरिम व्यवस्था ठीक वैसी है, जैसे किसी ट्रस्ट का रिसीवर नियुक्त होता है। कई बार अंतरिम व्यवस्था में जिलाधिकारी या कलेक्टर ही कुछ समय के लिए चीफ ट्रस्टी या रिसीवर या प्रशासक बन जाता है।

ऐसे ही वक़्फ बोर्ड ट्रस्ट ना होकर प्रशासनिक मशीनरी है, जो यह देखेगा कि कानून और वक़्फ की मूल भावना का पालन हो रहा है कि नहीं। इसलिए इसमें गैर कार्यकारी सदस्यों के रूप में दो गैर मुस्लिम सदस्यों की नियुक्ति से कोई आपत्ति नहीं होना चाहिए। यह ठीक वैसा ही है जैसे कुंभ मेला के प्रभारी मंत्री आजम खान बन जाते हैं, जैसे चैरिटी कमिश्नर, कलेक्टर, रिसीवर या प्रशासक किसी भी धर्म का हो, उस पर आपत्ति नहीं की जा सकती। यह सुधार प्रत्यक्ष वक़्फ ट्रस्ट जैसे कि मस्जिद, मदरसे या अन्य इस्लामिक वक़्फ में किसी गैर मुस्लिम नियुक्ति की बात नहीं करता है। सरकार वक़्फ में सुधार नहीं कर सकती, क्योंकि यह इस्लाम की व्यवस्था है। बोर्ड में नियुक्ति कर सरकार ने अपनी व्यवस्था में सुधार किया है ना कि इस्लाम की वक़्फ व्यवस्था में कोई छेड़छाड़।

●●●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

कट्टरता के साये में सर्व धर्म समभाव

▸▸मनोरमा पंत
वरिष्ठ साहित्यकार

धर्म किसी भी देश की सबसे बड़ी ताकत होता है। दुनिया में धर्म एक विश्वास प्रणाली है, जो जीवन और विचार की संपूर्णता को न केवल आकार देती है, बल्कि मानव समुदाय के प्रति अच्छाई और कर्तव्य के विचार को भी दशार्ती है। वात्स्यायन के अनुसार धर्म मनसा, वाचा और कर्मणा होता है। धर्म चिंतन और वाणी से भी संबंधित है। विश्व के सभी धर्म, समभाव, कर्त्तव्य, न्याय, सदाचरण, के मूल्यों से समृद्ध हैं। हिंदू धर्म तो पूरी तरह से 'वसुधैव कुटुम्बकम'की परिकल्पना पर आधारित है। उपनिषद में लिखा गया है-

सर्वे भवंतु सुखिनः,सर्वे संतु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यंतु ,मा कश्चिदुखभागभवेत ।

विश्व में सब लोग सुखी रहे, स्वस्थ रहें, सभी का कल्याण हो, किसी को भी दुख नहीं हो।

तो फिर क्या हुआ कि अगस्त, 2024 में ब्रिटेन के गृह विभाग के सचिव यवेट कूपर की बनाई गई समिति की रिपोर्ट में हिंदू राष्ट्रवाद और हिंदुत्व को एक उग्रवादी विचारधारा के रूप में मानकर ब्रिटेन के लिए खतरा बताया गया ।यह रिपोर्ट भारतीयों के मानस को ठेस पहुंचाने वाली है। साथ ही वह चेतावनी भी दे रही है कि क्या हिंदुत्व भी कट्टरता की ओर जा रहा है? याद रखें कट्टरता किसी भी धर्म में हो, विश्व शांति के लिए हमेशा खतरा ही बनी रहेगी।

इन दिनों हम देख रहे हैं कि पूरे विश्व में प्रत्येक धर्म में कट्टरता बढ़ती ही जा रही है,विशेषकर करोना काल के बाद जो सर्वधर्म सर्वभाव की भावना के प्रतिकूल है। मुस्लिम कट्टरवाद से दुनिया-भर पीड़ित है। साऊदी अरब, ईरान, अफ्रिका के देशों में शरिया कानून पूरी तरह से लागू है। जिसका कड़ाई से पालन किया जाता है और कराया जाता है। पाकिस्तान में भी आंशिक रूप से यह कानून लागू है।

शरिया 700से 800 ई.पूर्व की इस्लाम की समग्र जीवन प्रणाली है, जिसे कट्टर इस्लामवादी पुनः अपने देशों में लागू कर रहे हैं। इसका खामियाजा विशेषकर औरतों को उठाना पड़ रहा है। हाल का एक उदाहरण देखें। पाकिस्तान में मरियम ने यूएई के प्रेसिडेंट से हाथ मिलाया,तो पाकिस्तान में बवाल मच गया। और इसे इस्लाम के खिलाफ प्रचारित किया गया। बंग्लादेश में हिंदुओं के मंदिर और मकान उन्मादी भीड़ ने तोड़े, यह सर्वविदित है। दो

साल पहले ब्रिटेन के लेस्टर बर्मिंघम में भी हिंदुओं के मन्दिर घरों पर योजनाबद्ध हमला हुआ था। यूरोपीय देश स्वीडन कई वर्षो से धार्मिक कट्टरवाद से उपजी हिंसा का शिकार हो रहा है। स्वीडन में सलवान मोमिक नामक ईराकी युवक ने 2023 में कुरान की पवित्र पुस्तक को अपवित्र करने और जलाने की कई बार घटना की, जिसे गिरफ्तार कर मुकदमा चला परिणाम आने के पूर्व ही उसकी हत्या हो गई। फ्रांसीसी थिंकटैंक 'फोडापोल' के अनुसार वर्ष 1997 से अप्रैल 2024 के बीच दुनियाभर में 66,872 इस्लामी हमले हुए, जिनमें करीबन ढाई लाख लोग मारे गए।

अब बात करे ईसाई धर्म की,जनवरी, सात को जागरण पेपर में छपी एक खबर के अनुसार अमेरिका में लम्बे समय तक खड़े रहकर और 40दिन के उपवास जैसे कड़े नियम वाले रुढ़वादी चर्चों में लोगों का रुझान बढ़ा है। यह बढ़ती कट्टरता निश्चित रुप से सर्वधर्म समभाव के लिए ठीक नहीं होगी।

अब ज्वलंत प्रश्न है कि धमांधता को दूर कर सर्वधर्म समभाव की ज्योति कैसे जलाए? धर्म की कट्टरता और धर्मान्धिता के मूल में है सामाजिक-आर्थिक विषमता ,पहचान का संकट,गरीबी,भेदभाव,बेरोजगारी,सीमित संसाधन और अवसर। सरकार को समाज के सहयोग से इन कारणों को हल करना होगा। याद रखे गरीब अशिक्षित चरमपंथियों का सरलता से शिकार बन जाते हैं। धर्म के नाम पर उकसाने वाले धार्मिक आख्यानों पर रोक लगाने के साथ उनका खंडन भी होना चाहिए। भारत में जमीयत उलेमा -ए-हिन्द और अखिल भारतीय संत समिति ने साम्प्रदायिक विभाजन को पाटने और शांति को बढ़ावा देने के लिए संवाद शुरू किए हैं। अंतरधार्मिक संवाद विभिन्न धर्मों के बीच फैली गलतफहमियां दूर कर सकती है।

अब समय आ गया है कि बाल्यकाल से ही सर्वधर्म सर्वभाव की शिक्षा को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाया जाए। मातापिता का भी कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चों को भी सब धर्मों का आदर करने की शिक्षा दें। ●

(ये लेखिका के अपने विचार हैं)

(लेखिका लघु कथा शोध संस्थान भोपाल की कार्यकारिणी मंत्री हैं)

खान-पान पर तकरार

मुनीष भाटिया
वरिष्ठ स्तंभकार

भारत विविधताओं से भरा देश है, जहां हर व्यक्ति की धार्मिक आस्था और खान-पान की आदतें अलग-अलग होती हैं। हर साल किसी ना किसी पर्व के दौरान कुछ राज्यों और शहरों में मांसाहारी खाने की बिक्री और उपभोग को लेकर विवाद उठता है। कई नगर निगम और स्थानीय प्रशासन खुले में मीट बेचने पर रोक लगा देते हैं, कुछ जगहों पर होटल और रेस्तरां से भी इसे परोसने से मना कर दिया जाता है। यह बहस धार्मिक परंपराओं, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राजनीति के जटिल मिश्रण में उलझी हुई है। पर्व विशेष के दौरान यह बहस तेज हो जाती है कि क्या इस दौरान मांसाहार पर रोक लगाई जानी चाहिए या नहीं। कुछ लोग श्रद्धा और उपवास के रूप में शाकाहार अपनाते हैं, जबकि कुछ अपनी सामान्य खान-पान की आदतों को जारी रखते हैं। लेकिन जब मीट विक्रेताओं की दुकानों को जबरन बंद करवाया जाता है, तो यह न केवल उनकी आजीविका पर असर डालता है बल्कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का भी उल्लंघन करता है। पर्व विशेष के दौरान मांसाहार पर व्यक्तिगत स्तर पर रोक लगाना एक श्रद्धा का विषय है, लेकिन सामूहिक रूप से इसे थोपना उचित नहीं है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में हर व्यक्ति को अपनी पसंद के अनुसार खाने-पीने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। धार्मिक आस्था महत्वपूर्ण है, लेकिन इसे जबरदस्ती लागू करने से समाज में तनाव पैदा हो सकता है।

शाकाहारी होना हिन्दू धर्म का अधिकतर हिन्दू पर्व में महत्वपूर्ण हो जाता है, जिसे कई लोग पूरी श्रद्धा के साथ मनाते हैं। इनमें कुछ लोग पूरी तरह से सात्विक भोजन ग्रहण करते हैं, वहीं कुछ लोग नॉन-वेज से परहेज करते हैं। पर क्या इसका मतलब यह होना चाहिए कि जो लोग मांसाहार का सेवन करना चाहते हैं, उन्हें ऐसा करने से रोका जाए? भारत जैसे लोकतांत्रिक और बहुसांस्कृतिक देश में खाने की आदतें व्यक्तिगत पसंद पर आधारित होनी चाहिए, न कि बहुसंख्यक समुदाय की धार्मिक भावनाओं के आधार पर। भोजन का संबंध केवल शरीर को पोषण देने तक ही सीमित नहीं होता, बल्कि यह किसी भी समाज की सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान का एक अहम हिस्सा होता है। किसी व्यक्ति की भोजन की पसंद उसकी परवरिश, पारिवारिक परंपराओं, धार्मिक विश्वासों और व्यक्तिगत प्राथमिकताओं पर निर्भर करती है। भारत में विभिन्न धर्मों और समुदायों में भोजन को लेकर अलग-अलग मान्यताएं हैं। भारत की लगभग 83% आबादी मांसाहारी है, यानी बहुसंख्यक लोग किसी न किसी रूप में मांसाहार का सेवन करते हैं। ऐसे में यह सवाल उठता है कि क्या किसी व्यक्ति या समूह को किसी विशेष समय पर भोजन की एक विशिष्ट शैली को अपनाने या छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है?

हर साल किसी ना किसी पर्व विशेष के समय यह देखा जाता है कि कुछ स्थानों पर मांस की दुकानों को जबरन बंद करवाने की मांग की जाती है। कई नगर निगमों और स्थानीय प्रशासन आदेश जारी कर मीट की बिक्री पर रोक लगाता है। यह रोक व्यापारियों की आजीविका पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। भारत में लाखों लोग मीट उद्योग से जुड़े हुए हैं, जिनमें किसान, कसाई, दुकानदार, रेस्तरां मालिक और ट्रांसपोर्टर शामिल हैं। जब नवरात्रि के दौरान मीट की दुकानों को बंद किया जाता है, तो यह न केवल व्यापारियों की आय पर असर डालता है, बल्कि उनके परिवारों की आजी-विका भी प्रभावित होती है। अगर किसी शहर में मीट विक्रेता को कई दिनों

के लिए दुकानें बंद करने पर मजबूर किया जाता है, तो यह लाखों रुपए की आर्थिक हानि का कारण बन सकता है। मीट व्यापारियों का कहना है कि उन्हें अपनी दुकानें चलाने का उतना ही अधिकार है, जितना कि अन्य व्यवसायों को। अगर कोई व्यक्ति किसी पर्व के दौरान मांस नहीं खाना चाहता, तो वह स्वेच्छा से इसे छोड़ सकता है, लेकिन पूरे व्यवसाय पर प्रतिबंध लगाना न्यायसंगत नहीं है।

संविधान के अनुसार, भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है, जहां हर व्यक्ति को अपनी पसंद से जीने का अधिकार है। अनुच्छेद 21 प्रत्येक नागरिक को जीवन जीने और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार देता है, जिसमें भोजन की स्वतंत्रता भी शामिल है। अनुच्छेद 25 धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करता है, जिससे कोई भी व्यक्ति अपने धर्म और मान्यताओं का पालन कर सकता है। इसका मतलब यह है कि कोई भी व्यक्ति अपनी आस्था के अनुसार नवरात्रि में मांसाहार छोड़ सकता है, लेकिन इसे दूसरों पर थोपा नहीं जा सकता। भारत जैसे बहुसांस्कृतिक देश में सहिष्णुता और आपसी सम्मान की भावना सबसे महत्वपूर्ण है। जो लोग पर्व विशेष में मांसाहार नहीं करते, उनकी आस्था का सम्मान किया जाना चाहिए। व्यापारियों के लिए निष्पक्ष नीति बनाई जानी चाहिए, ताकि उनकी आजीविका पर कोई असर न पड़े। जब मीट की दुकानों को बंद करने का आदेश दिया जाता है, तो यह केवल धार्मिक भावना से नहीं, बल्कि राजनीतिक दबाव में भी किया जाता है। लेकिन अगर हम एक प्रगतिशील समाज चाहते हैं, तो हमें हर व्यक्ति की स्वतंत्रता और आस्था का सम्मान करना सीखना होगा।

भोजन की स्वतंत्रता और धार्मिक भावनाओं के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए कुछ सुझाव अपनाए जा सकते हैं। सबसे पहले, व्यक्तिगत निर्णय को महत्व दिया जाना चाहिए। अगर कोई व्यक्ति नवरात्रि में मांस नहीं खाना चाहता, तो वह इसे छोड़ सकता है। अगर सरकार या प्रशासन को लगता है कि धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुंचे, तो मीट व्यापारियों को मुआवजा देने की योजना बनाई जा सकती है। इसके बजाय, उन्हें जबरदस्ती दुकानें बंद करने पर मजबूर न किया जाए। तीसरा, सामाजिक जागरूकता बढ़ाई जाए, जिससे लोगों को यह समझाया जा सके कि आस्था व्यक्तिगत होती है और इसे दूसरों पर थोपना उचित नहीं है। सहिष्णुता और आपसी सम्मान को बढ़ावा दिया जाए और हमें ऐसे समाधान तलाशने चाहिए, जो हर वर्ग के हितों को ध्यान में रखते हुए सहिष्णुता और स्वतंत्रता के मूल्यों को बनाए रखें।

भोजन पर राजनीति करना बंद होना चाहिए। पर्व विशेष में मांसाहार पर प्रतिबंध की बहस केवल धार्मिक आस्था का मुद्दा नहीं है, बल्कि यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आजीविका और राजनीति से भी जुड़ा हुआ मामला बन गया है। अगर किसी को मांसाहार का सेवन नहीं करना, तो यह उनकी पसंद है, लेकिन दूसरों को इसे खाने से रोकना एक लोकतांत्रिक समाज के मूल्यों के खिलाफ है। सवाल यह उठता है कि अगर धार्मिक भावनाओं का सम्मान जरूरी है, तो क्या व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सम्मान नहीं होना चाहिए? आखिरकार, एक लोकतांत्रिक समाज की पहचान यही होती है कि वह सभी नागरिकों को समान अधिकार दे, चाहे वह आस्था से जुड़ा मुद्दा हो या खान-पान से जुड़ी उनकी व्यक्तिगत पसंद। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

पहलगाम का सच: दुश्मन बाहर, लड़ाई भीतर

प्रियंका सौरभ
वरिष्ठ स्तंभकार

पहलगाम हमला हमारे लिए एक चेतावनी है—अगर अब भी हम नहीं जागे, तो अगला निशाना कोई और नहीं, हम स्वयं होंगे। और तब शायद हमें यह कहने का भी वक्त न मिले कि "काश हमने समय रहते सही दुश्मन पहचाना होता।

एक ओर भारत जातियों, उपजातियों, विचारधाराओं और आस्थाओं के नाम पर खुद को खंड-खंड कर रहा है, दूसरी ओर हमारे दुश्मन संगठित होकर हमारी एकता पर प्रहार कर रहे हैं। अभी-अभी जम्मू-कश्मीर के पहलगाम में जो आतंकवादी हमला हुआ, उसने फिर से हमें यह याद दिला दिया कि असली दुश्मन हमारे भीतर नहीं, सरहद पार बैठा है। यह हमला एक साज़िश नहीं, बल्कि जिहादी विचारधारा की वह रक्तरंजित अभिव्यक्ति है, जो बीते कई दशकों से भारत को खून में डुबोने की फिराक में है।

इस हमले में निर्दोष नागरिक मारे गए, सुरक्षा बल घायल हुए, और एक बार फिर टीवी चैनलों पर वही पुराने दृश्य लौट आए—रोती हुई आंखें, खून से सना जमीन का टुकड़ा और राजनीतिक दलों की रस्मी प्रतिक्रियाएं। परंतु सबसे चिंताजनक बात यह है कि इस बार भी कई बुद्धिजीवी, पत्रकार और राजनीतिक विश्लेषक आतंकवाद की जड़ों पर प्रहार करने की बजाय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी पर आक्षेप लगाने में जुट गए।

यह कौन सी राजनीति है?

क्या हम उस मानसिक दिवालियापन की ओर बढ़ चुके हैं, जहां दुश्मन की गोलियों पर चुप्पी और देश के नेतृत्व पर तीखी टिप्पणियां फैशन बन चुका है? एक सवाल पूछना आवश्यक है—क्या मोदी आतंकवादियों को न्योता देकर पहलगाम लाए थे? क्या प्रधानमंत्री के रूप में उन्होंने ऐसे हमलों को प्रोत्साहन दिया?

दरअसल, नरेंद्र मोदी वही प्रधानमंत्री हैं, जिन्होंने पाकिस्तान की जमीन पर सर्जिकल और एयर स्ट्राइक कर भारत की नई सैन्य नीति की घोषणा की। यह वह प्रधानमंत्री हैं, जिनकी सरकार ने सेना को खुली छूट दी—'गोली का जवाब गोली से' सिर्फ नारा नहीं, रणनीति बन गई।

राजनीतिक इच्छाशक्ति और सुरक्षा ड्ड=ष्टिकोण

2016 में उरी हमले के बाद भारत की सर्जिकल स्ट्राइक, और 2019 में पुलवामा हमले के बाद बालाकोट एयर स्ट्राइक ने यह सिद्ध किया कि भारत अब केवल माफी मांगने वाला देश नहीं, जवाब देने वाला देश बन चुका है। ये कार्रवाइयां केवल सैन्य कौशल नहीं, राजनीतिक इच्छाशक्ति का प्रमाण थीं। इसके बाद अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी भारत की आतंकवाद के खिलाफ नीति को समर्थन मिला।

हाल ही में 26/11 हमले के मास्टरमाइंड तहव्वुर राणा को अमेरिका से प्रत्यर्पित करवाना भी इसी सरकार की कूटनीतिक जीत है। पाकिस्तान, जो पहले भारत को आंखें दिखाता था, आज आर्थिक दिवालियेपन के कगार पर खड़ा है और वैश्विक मंचों पर गिड़गिड़ा रहा है।

यह सब आकस्मिक नहीं हुआ। यह एक सुविचारित रणनीति, स्पष्ट लक्ष्य और कड़े फैसलों का परिणाम है।

लेकिन आलोचना फिर भी क्यों?

एक बड़ा वर्ग जो 'सेकुलरिज्म' के नाम पर हर जिहादी हमले के बाद मौन साध लेता है, वह मोदी सरकार पर हमलावर हो जाता है। उसके लिए आतंकवादियों का मजहब छिपाना जरूरी है, लेकिन सरकार को कठघरे में खड़ा करना भी जरूरी। इस विचारधारा को समझना होगा कि आतंकवाद का धर्म नहीं होता, लेकिन उसकी जड़ें किसी विचार में होती हैं। और उस विचार को नाम देने से डरना आत्महत्या के बराबर है।

जातियों में बंटा समाज, आतंक से अनजान देश

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि एक ओर हमारे युवा सोशल मीडिया पर रील्स और जातिवाद के बहसों में व्यस्त हैं, दूसरी ओर सीमा पर हमारे जवान आतंक की गोली से जूझ रहे हैं। एक तरफ 'जाति पूछकर नौकरी', 'धर्म पूछकर रोटी' की बहसें हैं, तो दूसरी तरफ आतंकवादी धर्म पूछकर गोली चला रहे हैं। यह विडंबना नहीं, चेतावनी है।

आज हमें तय करना है कि हम किसके साथ खड़े हैं—उनके, जो इस देश को टुकड़े-टुकड़े करना चाहते हैं, या उनके जो हर हमले का जवाब देने का साहस रखते हैं?

मोदी नहीं, मानसिकता दोषी है

आतंकवादी हमले के लिए मोदी को कोसना वैसा ही है, जैसे डॉक्टर की सर्जरी से पहले ही उसे मरीज की मौत का दोषी ठहरा देना। सच्चाई यह है कि इस हमले के लिए जिम्मेदार है वह जिहादी मानसिकता, वह पाकिस्तान जो आतंक को पालता है, और वह वैश्विक मौन जो इस विचारधारा पर चुप्पी साधे हुए है।

मोदी ने न सिर्फ जवाब दिया है, बल्कि आतंकियों और उनके आकाओं को पाताल से भी निकालने की शपथ ली है। उनकी सरकार का ट्रैक रिकॉर्ड यही कहता है। तो क्या अब हमें एकजुट होकर आतंक के खिलाफ खड़ा नहीं होना चाहिए?

एकजुट भारत ही समाधान है

पहलगाम का हमला हमें एक बार फिर झकझोर गया है। यह पहला हमला नहीं है, और शायद आखिरी भी नहीं। लेकिन अगर हम अब भी नहीं जागे, अगर हम अब भी आपस में लड़ते रहे, तो दुश्मन की जीत सुनिश्चित है। हमें एक ऐसे भारत की आवश्यकता है जो जातियों, धर्मों और मतभेदों से ऊपर उठकर आतंकवाद को पहचान सके और उसका सामना कर सके।

राजनीतिक मतभेद रखें, लेकिन राष्ट्रीय मुद्दों पर एकजुट रहें। आलोचना करें, पर लक्ष्य सही चुनें। आतंकवादी की गोलियों पर चुप्पी और प्रधानमंत्री पर शोर—यह आत्मघात है।

पहलगाम हमला हमारे लिए एक चेतावनी है—अगर अब भी हम नहीं जागे, तो अगला निशाना कोई और नहीं, हम स्वयं होंगे। और तब शायद हमें यह कहने का भी वक्त न मिले कि ₹काश हमने समय रहते सही दुश्मन पहचाना होता। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

राजदीप सरदेसाई
वरिष्ठ पत्रकार, चर्चित स्तंभकार

क्या वाकई जम्मू-कश्मीर में हालात 'सामान्य' हो गए थे?

सरकार सीमापार आतंकवाद को खत्म करने में विफल रही है। पठानकोट से पहलगाम तक– पाकिस्तान आतंक को प्रायोजित करना जारी रखे है। पाकिस्तान को अपने किए की कीमत चुकानी होगी। लेकिन भारत को भी दु:ख और गुस्से की इस घड़ी में एकजुट रहना होगा।

जम्मू-कश्मीर को लेकर होने वाली चचाओं में एक शब्द बार-बार सामने आता है- 'सामान्य हालात'। राजनेता और विश्लेषकगण अकसर दावा करते हैं कि अब घाटी में ऱसामान्य हालात' बहाल हो रहे हैं। लेकिन कड़वी सच्चाई यह है कि पिछले साढ़े तीन दशकों से कश्मीर में चाहे जो हालात रहे हों, वे 'सामान्य' तो हरगिज नहीं थे। पहलगाम में हुआ आतंकी हमला हमें एक बार फिर याद दिलाता है कि रक्तरंजित घाटी में हर बार जब उम्मीद की खिड़की खोली जाती है तो उसे दहशत के सौदागरों द्वारा फौरन बंद करा दिया जाता है।

याद करें कि अगस्त, 2019 में अनुच्छेद 370 को निरस्त करने के तुरंत बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने ह्यनए कश्मीरह्न के बारे में एक सपना बुना था कि यह 'सामान्य हालात' की ओर एक बड़ा कदम है। वादा किया गया था कि कश्मीर में निवेश की बाढ़ आएगी, बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे का विकास होगा और उसकी हसीन वादियों की रुपहले परदे पर भी वापसी हो जाएगी। वह तेजी से नए भारत में मुख्यधारा में शामिल हो जाएगा। ये सच है कि वहां पर नई सड़कें, राजमार्ग, सुरंगें बनाई गई हैं।

लेकिन 'सामान्य हालात' केवल बुनियादी ढांचे के ही आसरे नहीं होते। उन हालात को भला कैसे ह्यसामान्यह्न मान लिया जाए, जब देश के इकलौते मुस्लिम बहुल राज्य को रातों-रात एक फरमान द्वारा विभाजित करके केंद्र शासित प्रदेश बना दिया जाता है? जब तीन पूर्व मुख्यमंत्रियों को हिरासत में लेकर उनके घर में नजरबंद कर दिया जाता है? जब हजारों कश्मीरियों को कठोर कानूनों के तहत गिरफ्तार करके जेल में ठूंस दिया जाता है? जब स्कूल

महीनों तक बंद रहते हैं और इंटरनेट बंद होना आम बात हो जाती है? जब हजारों सुरक्षा बल घाटी के हर कोने में घूम रहे होते हैं? जब पाकिस्तान कश्मीर में हिंसा फैलाने के लिए युवाओं को प्रशिक्षण देना जारी रखता हो?

'सामान्य हालात' का ढिंढोरा पिछले साल हुए चुनावों में तब भी बजाया गया था, जब लोकसभा तथा विधानसभा दोनों में पहले से अधिक मतदान हुआ। अलगाववादी समूहों के चुनावों के बहिष्कार और मतदाताओं पर दबाव बनाने का संकेत नहीं मिला। हुर्रियत कॉन्फ्रेंस को शक्तिशाली भारतीय मशीनरी ने प्रभावी रूप से कमजोर कर दिया है।

उमर अब्दुल्ला निर्वाचित मुख्यमंत्री हैं, लेकिन यह 'सामान्य' कैसे हो सकता है जब मुख्यमंत्री के पास लगभग कोई अधिकार नहीं हैं- अधिकारियों की नियुक्ति या तबादले के भी नहीं। यह 'सामान्य' कैसे हो सकता है, जब एक अनिर्वाचित उपराज्यपाल- जिनका कश्मीर से कोई ताल्लुक नहीं है- को कानून-व्यवस्था के सभी अधिकार दे दिए गए हैं? जम्मू-कश्मीर के लोगों ने बड़ी संख्या में इस उम्मीद में मतदान किया था कि वहां होने वाले चुनाव राज्य का दर्जा बहाल करने की प्रस्तावना हैं।

लेकिन वह वादा अभी भी अधूरा है। 'सामान्य स्थिति' के नैरेटिव को पर्यटन में उछाल ने भी मजबूत किया। श्रीनगर के बगीचों में ट्यूलिप खिल रहे थे, पीक-सीजन में डल झील पर शिकारे और हाउस-बोट ओवर-बुक्ड थे, पहलगाम में ट्रैकिंग और गुलमर्ग में स्कीइंग पर्यटकों को आकर्षित कर रही थी। नए होटलों की योजना बनाई जा रही थी। केंद्र ने भी जम्मू-कश्मीर को एक टूरिस्ट-फ्रेंडली डेस्टिनेशन के रूप में बढ़ावा दिया था। श्रीनगर जी20 टूरिज्म समिट की मेजबानी कर रहा था। लेकिन टूरिज्म ही तो 'सामान्य हालात' का संकेत नहीं होता।

केंद्र ने दावा किया कि हाल के वर्षों में आतंकी हमलों में मारे गए नागरिकों की संख्या में कमी आई है। लेकिन ये आंकड़े एक भयावह सच्चाई को छिपाते हैं। जहां सशस्त्र बलों और आतंकवादी समूहों के बीच मुठभेड़ें बेरोकटोक जारी रही हैं, वहीं पुंछ-राजौरी क्षेत्र के घने जंगलों में हमले नए सिरे से बढ़े हैं। यह कैसे 'सामान्य' है कि आतंकवादी टारगेटेड-हमलों में लिप्त हैं? यह कैसे 'सामान्य' है कि कश्मीरी पंडित अभी भी अपने घरों में वापस नहीं लौट पा रहे हैं? यह कैसे 'सामान्य' है कि अमरनाथ यात्रा पर आतंकवादी हमले का खतरा हमेशा बना रहता है?

पाकिस्तानी नेटवर्क के समर्थित इस्लामिक आतंकवादी इस क्षेत्र में अपनी हरकतों को अंजाम देना जारी रखे हुए हैं। पाकिस्तान लश्कर-मॉड्यूल को पनाह देना जारी रखे हुए है। हाल के वर्षों में 'हाइब्रिड' आतंकवादियों का उदय हुआ है, जो पाकिस्तानी आतंकवादियों और स्थानीय कश्मीरियों का मिश्रण हैं। यह कैसे 'सामान्य' है कि घाटी के नौजवान बेरोजगारी और ड्रग्स के खतरे के बीच गोला-बारूद में सांत्वना तलाशते हैं?

सरकार सीमापार आतंकवाद को खत्म करने में विफल रही है। पठानकोट से पहलगाम तक- पाकिस्तान आतंक को प्रायोजित करना जारी रखे है। पाकिस्तान को अपने किए की कीमत चुकानी होगी। लेकिन भारत को भी दुःख और गुस्से की इस घड़ी में एकजुट रहना होगा। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

नोचने होंगे आतंक के पंख

घनश्याम बादल
वरिष्ठ स्तंभकार

आतंकवाद का एक और घिनौना चेहरा पहलगाम में सामने आया है। जब से कश्मीर से धारा 370 हटाई गई है। और नई विधानसभा का गठन हुआ है, तभी से आतंकवाद लगातार सर उठाने का प्रयास करता रहा है। सच यह भी है कि वहां आतंकवाद को प्रेशर देने के लिए पाकिस्तानी खुफिया एजेंसियां और वहां की राजनीतिक मजबूरियां इसके पीछे सबसे बड़े जिम्मेदार तत्व हैं। लेकिन लंबे समय से उन्हें वहां ज्यादा कुछ करने का मौका नहीं मिला था। ऐसे में उन्होंने पहलगाम की उस बैसरन घाटी को चुना जो अमरनाथ यात्रा का भी एक मुख्य बिंदु है, और अमरनाथ यात्रा के दौरान इस क्षेत्र का बहुत अच्छे से सेना एवं स्थानीय सुरक्षा बलों ने सैनिटाइजेशन किया है। लेकिन अभी अमरनाथ यात्रा दूर है, इसलिए संभव है, वहां की सतर्कता कम हुई हो। और इसका फायदा आतंकवादियों ने उठकर पहलगाम में पर्यटकों की बड़ी संख्या में जान ले ली।

पहलगाम जैसे संवेदनशील क्षेत्रों में आतंकवादी हमलों के पीछे कई प्रछन्न उद्देश्य हैं। ऐसे हमलों के पीछे आमतौर पर कई कारण और ताकतें होती शामिल हैं। यदि पहलगाम के आतंकी हमले पर एक निगाह डाली जाए तो साफ पता चलता है कि इस हमले में पाकिस्तान आधारित आतंकवादी संगठन जैश-ए-मोहम्मद, लश्कर-ए-तैयबा, और हिज्बुल मुजाहिदीन जैसे आतंकी संगठन कश्मीर घाटी में अस्थिरता फैलाने को आतुर जिम्मेदार हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इन संगठनों को पाकिस्तान की खुफिया एजेंसीज का हमेशा का समर्थन मिलता रहा है। दरअसल पिछले एक लंबे समय से जम्मू कश्मीर शांत क्षेत्र के रूप में तरक्की की सीढ़ियां चढ़ता हुआ नजर आ रहा था और वहां पर पर्यटन उद्योग भी बहुत फल फूल रहा था और यह बात हमारे ईर्ष्यालु पड़ोसी को निराश आनी थी और एन आई क्योंकि उसका उद्देश्य हमेशा ही भारत में अस्थिरता फैलाना रहा है। आतंकवादी संगठन भारत में सांप्रदायिक तनाव और अस्थिरता फैलाना चाहते हैं ताकि देश की एकता और अखंडता को चोट पहुंचाई जा सके।

पाकिस्तान का हमेशा से ही कश्मीर मुद्दे का अंतरराष्ट्रीयकरण करने का प्रयास जग जाहिर है। अब वह सीधे-सीधे तो भारत पर हमला करने की स्थिति में है नहीं क्योंकि उसकी एवं भारत की सैन्य ताकत में जमीन आसमान का अंतर है । ऐसे में वह अपने पाले हुए आतंकी संगठनों का सहारा लेता रहा है। हमलों के जरिए ये संगठन दुनिया का ध्यान कश्मीर की ओर खींचना चाहते हैं ताकि उसे एक 'विवादित क्षेत्र' के रूप में पेश किया जा सके। यह संगठन अपने आका के कहने पर कश्मीर के पर्यटन और अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचने की कोशिश करते रहते हैं। पहलगाम जैसे स्थान, अमरनाथ यात्रा और अन्य पर्यटन केंद्र आतंकियों के निशाने पर इसलिए होते हैं क्योंकि वे कश्मीर की अर्थव्यवस्था में योगदान करते हैं। हमलों से पर्यटन प्रभावित होता है।

अपनी स्लीपिंग सेल्स के माध्यम से ये संगठन स्थानीय युवाओं का कट्टरपंथीकरण और ब्रेन वाश भी लगातार करते रहे हैं जिससे उन्हें वहां के कुछ गिने-चुने स्थानीय लोगों का समर्थन भी मिल जाता है। ऐसे हमलों के जरिए ये ताकतें स्थानीय युवाओं को प्रभावित कर उन्हें उग्रवाद की ओर मोड़ना चाहती हैं।

आतंकवादियों का लक्ष्य किसी भी हाल में भारतीय सुरक्षा बलों का मनोबल तोड़ना भी रहता है। सेना, सी आर पी एफ और पुलिस बलों को निशाना बनाकर आतंकवादी उनके मनोबल को तोड़ने और जनता में भय का माहौल बनाने का प्रयास करते हैं।

इस हमले में जिस टीआरएफ का नाम आया है जो एक नया लेकिन बेहद सक्रिय आतंकवादी संगठन है जो विशेष रूप से कश्मीर घाटी में आतंकी गतिविधियों को अंजाम देने के लिए सक्रिय रहता है। वास्तव में यह संगठन लश्कर ए तैयबा की ही एक छद्म शाखा है जो 2019 में अनुच्छेद 370 हटाए जाने के कुछ ही समय बाद बना था। अंतरराष्ट्रीय दबाव और प्रतिबंधों के कारण इसका नाम बदलकर एक नया चेहरा दिया गया।

यह संगठन कितना चालाक है कि इसके सदस्य विभिन्न कंपनियों तक में कर्मचारियों के रूप में काम करते हैं. टीआरएफ सोशल मीडिया और साइबर स्पेस में भी सक्रिय रहता है जहां ये युवाओं को कट्टरपंथी बनाने का काम करता है। रणनीति के तहत यह संगठन आमतौर पर छोटे हथियारों से हमले करता है जिसमें स्थानीय नागरिक, प्रवासी मजदूर, पंचायत सदस्य या पुलिस बल के जवान निशाने पर होते हैं मगर इस बार तो इन्होंने एक-47 जैसी रायफलों का इस्तेमाल करके यह जता दिया है कि अब यह एक साधन संपन्न संगठन है एवं इसे नजर-अंदाज करना बहुत खतरनाक हो सकता है।

यह संगठन खुद को 'स्वदेशी कश्मीरी प्रतिरोध' के रूप में पेश करता है ताकि यह दिखाया जा सके कि ये आंदोलन बाहर से थोपा गया नहीं बल्कि स्थानीय है । टीआरएफ सोशल मीडिया और इंटरनेट सेवी आतंकी संगठन है जो धमकियाँ देना, ज़िम्मेदारी लेना, वीडियो जारी करना आदि बड़ी सक्रियता के साथ करता है। इसी टीआरएफ ने पिछले कुछ वर्षों में श्रीनगर, बारामुला, अनंतनाग और पुलवामा जैसे इलाकों में कई टारगेटेड किलिंग्स और ग्रेनेड हमलों की ज़िम्मेदारी ली है।

पहलगाम जैसे संवेदनशील क्षेत्र में आतंकवादी हमले की स्थिति में राज्य सरकार और भारत सरकार को त्वरित और दीर्घकालिक दोनों स्तरों पर ठोस कार्रवाई करनी होगी। त्वरित प्रतिरोध और ऑपरेशन एनकाउंटर या सर्च ऑपरेशन चलाकर आतंकवादियों को जल्द से जल्द पकड़ना या मारना होगा । सुरक्षाबलों की संख्या और गश्त बढ़ाने, खासकर संवेदनशील क्षेत्रों और यात्रा मार्गों पर (जैसे अमरनाथ यात्रा मार्ग)। इंटेलिजेंस नेटवर्क को मजबूत करने स्थानीय और केंद्रीय एजेंसियों के बीच समन्वय बढ़ाने।मानव और तकनीकी खुफिया दोनों को बढ़ावा अपनाना होगा। स्थानीय जनता का विश्वास बहाल करना होगा उनके साथ संवाद बढ़ाना होगा ताकि वे आतंकियों का समर्थन न करें और सूचनाएँ साझा करें।

बेशक, वर्तमान सरकार आतंकवाद के प्रति जीरो टॉलरेंस की नीति पर चलती है। और उस पर शक्ति से चलना भी होगा, लेकिन बिना सोचे समझे और बिना रणनीति के कार्रवाई करना भी एक गलत संदेश देगा। वही ऐसी हरकतों को चुपचाप सहना या इसमें बहुत देरी करना भी खतरनाक है। कुल मिलाकर अब बारी राज्य एवं केंद्र सरकार की है। और उसे अपनी भूमिका बहुत अच्छे से निभाते हुए सिद्ध करना होगा कि भारत अब ऐसी गतिविधियों को किसी भी हाल में सहन करने वाला नहीं है। सभी राजनीतिक दलों को भी आगे बढ़कर बजाय राजनीति करने के आतंकियों के खिलाफ एक जुट होकर सरकार के साथ खड़ा होना चाहिए। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

चिंगारी का खेल

सुनील कुमार महला
वरिष्ठ स्तंभकार

हाल ही में पहलगाम आतंकी हमले में विदेशी नागरिकों समेत 26 की मौत हो गई, और मरने वालों में अधिकांश पुरुष हैं। वास्तव में यह बहुत ही दुखद व अति निंदनीय घटना है ।यह हमला ऐसे समय हुआ है, जब करीब सवा दो महीने बाद अमरनाथ यात्रा होनी है। कहना गलत नहीं होगा कि इससे आतंक का घिनौना चेहरा दुनिया के सामने आया है। यह 2019 के पुलवामा हमले के बाद घाटी में सबसे घातक व बड़ा हमला है। हमले के बाद क्षेत्र में ऑपरेशन तेजी से चलाया जा रहा है और पर्यटकों को कश्मीर से जल्द से जल्द निकालने की कोशिश की जा रही है। सहायता के लिए इमरजेंसी नंबर भी जारी किए गए हैं। कितनी बड़ी बात है कि आतंकियों ने टूरिस्ट्स को निशाना बनाया और गोलीबारी की। आतंकी घटना के बाद गृहमंत्री अमित शाह श्रीनगर पहुंचे, और सऊदी दौरा बीच में ही छोड़कर स्वयं प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी दिल्ली पहुंच चुके हैं और दिल्ली पहुंचते ही उन्होंने एयरपोर्ट पर ही पहलगाम टेरर अटैक पर बैठक की है। बताया जा रहा है कि कैबिनेट कमेटी ऑन सिक्योएरिटी की बैठक भी बुलाई गई है। इससे पहले गृहमंत्री अमित शाह ने आईबी चीफ, जम्मू-कश्मीकर के डीजी और सेना व सीआरपीएफ के आला अधिकारियों के साथ एक हाई-लेवल मीटिंग भी की और पीएम मोदी इस मीटिंग में वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग से उपलब्ध रहे। जम्मू-कश्मीर के सीएम उमर अब्दुल्ला भी इस घटना को लेकर काफी गंभीर हैं ।बताया जा रहा है कि कुल चार आतंकियों ने इस आतंकी वारदात को अंजाम दिया, जिसमें से तीन पाकिस्ता नी और एक लोकल कश्मीयरी हैं। मीडिया में आई रिपोर्ट्स के मुताबिक जब दोपहर को यह वारदात हुई तब सैलानी वहां घुड़सवारी कर रहे थे। तभी आतंकी वहां पहुंचे और उन्होंदने पंजाबी में टूरिस्टा से उनका मजहब पूछा और पहचान स्थानपित होने के बाद लोगों को मौत के घाट उतारा गया। दरअसल,आतंकी हमले के बाद सामने आए वीडियो में इस बात की पुष्टि हुई है कि हथियारबंद हमलावरों ने नाम पूछकर गोली मारी ।जानकारी के अनुसार इस दौरान आतंकियों द्वारा करीब 50 राउड फायरिंग की गई। गौरतलब है कि आतंकी सेना और पुलिस जैसी वर्दी में थे और सभी के पास एके-47 और दूसरे हथियार थे ।बहरहाल, यहां यह कहना गलत नहीं होगा कि इसे कश्मीर घाटी में 'जिहादी आतंक' का अत्यंत घिनौना बर्बर चेहरा ही कहा जा सकता है। वास्तव में, आतंकियों ने पहलगाम में निर्दोष-निहत्थे पर्यटकों की जिस तरह पहचान पता करके(नाम व मजहब पूछकर) गोलियां बरसाईं, उससे तो यही पता चलता है कि वे केवल कश्मीर घाटी में खौफ ही नहीं पैदा करना चाहते थे, बल्कि बड़ी संख्या में लोगों का खून बहाकर दुनिया का ध्यान भी खींचना चाहते थे। आतंकी धर्म पूछकर गोली मार रहे हैं और यह बात कही जाती है कि आतंकवाद और आतंकियों का कोई धर्म नहीं होता? आतंकियों ने ऐसे समय में पर्यटकों को निशाना बनाया, जब अमेरिकी उपराष्ट्रपति भारत में हैं और भारतीय प्रधानमंत्री सऊदी अरब में। वास्तव में यह हमला मानव हीनता की पराकाष्ठा ही कहा जा सकता है, क्यों कि आतंकियों ने उन पर्यटकों को निशाना बनाया, जो कश्मीरियों को पर्यटन के रूप में किसी न किसी रूप में सहारा देने कश्मीर गये थे। निश्चित ही इस आतंकी हमले का असर वहां के पर्यटन व दैनिक जीवन पर पड़ेगा, क्योंकि हमले के बाद घाटी में डर व खौफ का माहौल पैदा हो गया है। कहना गलत नहीं होगा कि हमले के बाद पूरे देश में आक्रोश की बड़ी लहर है। वास्तव में, अनुच्छेद 370 हटाए जाने के बाद पहली बार कश्मीर में इतना बड़ा आतंकी हमला हुआ है। कहना गलत नहीं होगा कि आतंकवाद और आतंकियों को करारा जवाब दिया जाना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो गया है। जिन आतंकियों ने हमले को अंजाम दिया है, उनमें से तीन पाकिस्तानी बताए जा रहे हैं, ऐसे में आज जरूरत इस बात की है कि भारत पाकिस्तान को इस हमले का मुंहतोड़ व करारा जवाब दे। आज पाकिस्तान आर्थिक रूप से बदहाली झेल रहा है और उस पर बहुत पहले से आतंकवाद और आतंकियों का ठप्पा लग चुका है। पाकिस्तान की यह आदत रही है कि वह भारत के खिलाफ छद्म युद्ध का खेल खेलता रहता है। एक तरफ तो वह भारत से शांति, सौहार्द और भाईचारे की बात करता नजर आता है तो दूसरी तरफ आतंकवाद का घिनौना खेल खेलता रहता है।

कुछ समय पहले ही पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद में ओवरसीज पाकिस्तानियों के पहले सालाना सम्मेलन में पाकिस्तान के आर्मी चीफ जनरल असीम मुनीर ने भारत, हिंदू धर्म, दो-राष्ट्र सिद्धांत, कश्मीर और गाजा जैसे मामलों पर बयान दिए थे। और मुनीर के ये बयान न केवल विवादित थे, बल्कि विभाजनकारी और नफरत फैलाने वाले भी थे। गौरतलब है कि पाकिस्तान के सेना प्रमुख जनरल असीम मुनीर ने कुछ समय पहले ही कश्मीर मुद्दे को हवा देते हुए इसे अपने देश की 'गले की नस' बताया था और यह बात कही थी कि इस्लामाबाद 'इसे नहीं भूलेगा।' उल्लेखनीय है कि पिछले साल यानी कि फरवरी, 2024 में भी जनरल मुनीर ने सेना की एक बैठक को संबोधित करते हुए यह कहा था कि 'भारत द्वारा अंतरराष्ट्रीय कानूनों का खुलेआम उल्लंघन किया जा रहा है और उसका

असली चेहरा दुनिया के सामने आना चाहिए।'

मई, 2024 में भी भारत को अपना 'कट्टर-प्रतिद्वंद्वी' बताते हुए, पाकिस्तान के सेना प्रमुख जनरल सैयद असीम मुनीर ने कश्मीर को इस्लामाबाद के 'नैतिक, राजनीतिक और कूटनीतिक समर्थन' जारी रखने का वादा किया था। कहना गलत नहीं होगा कि कट्टरपंथियों को जनरल मुनीर की बातों से कहीं न कहीं ताकत मिली होगी।

सच तो यह है कि जनरल मुनीर के बयानों से आतंकियों का दुस्साहस निश्चित रूप से बढ़ा है, और इसका जीता-जागता प्रमाण कश्मीर में हुआ आतंकी हमला है। यहां यह भी कहना चाहूंगा कि बांग्लादेश में तख्तापलट और वहां भारत विरोधी भावनाओं के उभार के बाद पाकिस्तान के मंसूबे और अधिक बढ़ गएं हैं कि वह भारत में आतंकवाद फैलाए और आतंकियों और आतंकवाद के जरिए अपना उल्लू सीधा करे। पाकिस्तान को यह उम्मीद है कि अब उसे बांग्लादेश का साथ भी मिल जाएगा।

गौरतलब है कि अमेरिका, पाकिस्तान से नाराज है और इसका पता हमें इस बात से चलता है कि कुछ समय पहले ही अमेरिका ने आतंकी खतरों के कारण अपने नागरिकों को पाकिस्तान की यात्रा न करने के लिए एक एडवायजरी जारी की थी। दरअसल, यह चेतावनी/एडवायजरी अमेरिकी विदेश विभाग द्वारा जारी की गई थी, जिसमें बलूचिस्तान और खैबर पख्तूनख्वा जैसे क्षेत्रों में सुरक्षा चिंताओं को उजागर किया गया था, जहां चरमपंथी समूह सक्रिय हैं और लगातार हमलों को अंजाम दे रहे हैं।अब चीन के साथ संबंध मजबूत करके पाकिस्तान अमरीका की कमी को पूरी करने में लगा हुआ है। दरअसल, पाकिस्तान के मंसूबे ठीक नहीं है और वह कश्मीर घाटी में आतंकवाद फैलाकर कश्मीर हथियाने का सपना देखता रहा है, लेकिन पाकिस्तान का यह सपना कभी भी पूरा नहीं होने वाला है।पाकिस्तान वर्ष 1971 का बदला भी भारत से लेना चाहता है। और वह भारत में रह-रहकर अशांति फैलाने की नए सिरे से कोशिश करता रहता है। अब पहलगाम हमले के बाद यह पूरी तरह से साफ हो गया है कि पाकिस्तान, भारत में आतंकी हमलों के साथ धार्मिक अलगाव की भावना भी पैदा करना चाहता है। भारत को यह चाहिए कि वह पाकिस्तान की नापाक व कुटिल हरकतों को समझे और अमन-चैन को प्राथमिकता दें। देश के आम नागरिकों को भी ऐसे समय में शांति,संयम से काम लेना होगा और इस बात के प्रयास करने होंगे कि समाज और देश का माहौल न बिगड़ने पाए। निश्चित रूप से सरकार आतंकवाद और आतंकियों के खिलाफ कड़ी से कड़ी कार्रवाई करेगी, इसमें कोई दोराय नहीं है क्यों कि आतंकवाद और आतंकियों के खिलाफ हमारे देश की नीति 'जीरो टोलरेंस' की रही है। आज हमारे देश की विभिन्न सुरक्षा एजेंसियां चौकस व सजग हैं और आतंकियों/आतंकवाद को मुंहतोड़ जवाब देने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

हमें यह चाहिए कि हम पाकिस्तान के मंसूबों को विफल करने और उसे कड़ा जवाब देने की रणनीति की दिशा में एकजुटता से काम करें। वास्तव में हमें आतंकवाद और आतंकियों से लड़ने का संकल्प लेने के साथ ही उसे पूरा करने की ठोस रणनीतियां बनानी होंगी। और इस पर पूरी तन्मयता और ईमानदारी से काम करना होगा।

आज पाकिस्तान सुलगते बलूचिस्तान से पूरी दुनिया का ध्यान हटाना चाहता है। और उसे यह बिलकुल भी रास नहीं आ रहा है कि कश्मीर में 370 हटाये जाने के बाद स्थितियां तेजी से सामान्य होती चलीं जा रही हैं। कहना गलत नहीं कि पाकिस्तान भरोसे के लायक देश नहीं है। और उसका मकसद भारत में आतंकवाद फैलाना है।

अटल बिहारी वाजपेई जी के शब्दों में यही -'एक नहीं दो नहीं करो बीसों समझौते, पर स्वतन्त्र भारत का मस्तक नहीं झुकेगा। अगणित बलिदानों से अर्जित यह स्वतन्त्रता, अंश्रु स्वेद शोणित से सिंचित यह स्वतन्त्रता।त्याग तेज तपबल से रक्षित यह स्वतन्त्रता, दुःखी मनुजता के हित अर्पित यह स्वतन्त्रता। इसे मिटाने की साजिश करने वालों से कह दो, चिनगारी का खेल बुरा होता है औरों के घर आग लगाने का जो सपना, वो अपने ही घर में सदा खरा होता है।' ●

(लेखक के अपने विचार हैं। लेखक फ्रीलांस व युवा साहित्यकार हैं)

पहलगाम में आतंक का सबसे बर्बर चेहरा

ललित गर्ग
वरिष्ठ स्तंभकार

जम्मू-कश्मीर में स्थित पहलगाम, जिसे 'मिनी स्विट्ज़रलैंड' के नाम से जाना जाता है,वह एक भीषण, दर्दनाक एवं अमानवीय आतंकी हमले का गवाह बना। एक बार फिर आतंक का घिनौना-बर्बर चेहरा दिखा। आतंकियों ने पहलगाम में निर्दोष-निहत्थे पर्यटकों की जिस तरह पहचान पता करके गोलियां बरसाईं, उससे यही पता चलता है कि वे केवल खौफ ही नहीं पैदा करना चाहते थे, बल्कि बड़ी संख्या में लोगों का खून बहाकर दुनिया का ध्यान भी खींचना चाहते थे। यह आतंकवाद एवं सांप्रदायिक घृणा का अब तक का सबसे घिनौना एवं बर्बर हमला है। यह पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद के मूल एजेंडे का हिस्सा है। इस जघन्य एवं त्रासद घटना में निर्दोष पर्यटकों को तब मौत की गहरी नींद सुलाया गया, जब अमेरिकी

उपराष्ट्रपति भारत में हैं और भारतीय प्रधानमंत्री सऊदी अरब में। इस हमले ने यह प्रकट किया कि कश्मीर में बचे-खुचे आतंकी किसी भी सीमा तक गिरने पर आमादा हैं। आतंकियों ने उन पर्यटकों को निशाना बनाया, जो कश्मीरियों की रोजी-रोटी को ही सहारा देने कश्मीर गए थे। यह हमला इतना वीभत्स था कि उसने हर संवेदनशील दिल को झकझोर कर रख दिया। आतंकियों ने नृशंसता की सारी सीमाएं पार करते हुए अंधाधुंध गोलीबारी की, जिसमें 28 पर्यटक, जिनमें दो विदेश नागरिक भी थे, की दर्दनाक मौत हो गई।

हमले की जिम्मेदारी पाकिस्तान में स्थित प्रतिबंधित आतंकी संगठन लश्कर-ए-तैयबा से जुड़े संगठन 'द रेजिस्टेंस फ्रंट' (टीआरएफ) ने ली है। सुरक्षा एजेंसियों का मानना है कि हमलावरों ने दक्षिण कश्मीर के कोकेरनाग से होते हुए किश्तवाड़ के रास्ते बैसरन तक पहुंच बनाई। घटना दोपहर करीब तीन बजे की है, जब बैसरन के घास के मैदान और आसपास के इलाकों में भारी संख्या में पर्यटक मौज-मस्ती कर रहे थे, कुछ खच्चरों की सवारी का आनंद ले रहे थे तो कुछ परिवार पिकनिक मना रहे थे। तभी घात लगाए बैठे आतंकियों ने ताबड़तोड़ फायरिंग शुरू कर दी। इस घटना के लिये सीधे तौर पर पाकिस्तान जिम्मेदार है।इसकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि चंद दिन पहले ही पाकिस्तान के सेनाध्यक्ष आसिम मुनीर ने किसी जिहादी की तरह हिंदुओं और भारत के खिलाफ अपनी घृणा का भद्दा प्रदर्शन किया था। अबू मूसा का वह भाषण और उसके तुरंत बाद हुआ पहलगाम नरसंहर दर्शाता है कि पीओके में बैठे आतंकी सरगना न केवल भारत विरोधी जहरीला प्रचार फैला रहे हैं, बल्कि कश्मीर घाटी की शांति, विकास एवं सौहार्द को बाधित करने की हर कोशिश को सफल बनाने में जुटे हैं। वे आगामी समय में घाटी को फिर से अशांत करने की योजना पर भी काम कर रहे हैं। इस भीषण आतंकी हमले के बाद घाटी में पर्यटन संबंधी कारोबार करीब-करीब ठप पड़ना तय है। आखिर इतनी भयावह घटना के बाद कौन पर्यटक कश्मीर की ओर रुख करेगा?

लम्बे समय की शांति, अमन-चैन एवं खुशहाली के बाद एक बार फिर कश्मीर में अशांति एवं आतंक के बादल मंडराए हैं। धरती के स्वर्ग की आभा पर लगे ग्रहण के बादल छंटने लगे थे कि एक बार फिर पहलगाव में आतंकियों ने पूरे देश में आक्रोश की लहर पैदा करने वाली घटना को अंजाम दिया है। अनुच्छेद 370 हटाए जाने के बाद पहली बार कश्मीर में इतना बड़ा आतंकी हमला हुआ है। आतंकियों और उनके समर्थकों को करारा जवाब दिया जाना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। पहलगाम में आतंकी हमले की गंभीरता इससे प्रकट होती है कि जहां गृहमंत्री अमित शाह आनन-फानन श्रीनगर के लिए रवाना हुए, वहीं सऊदी अरब गए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी अपनी यात्रा बीच में छोड़कर दिल्ली आ गए। दिल्ली आते ही एयरपोर्ट पर ही एक मीटिंग की, जिसमें अजित डोभाल से गंभीर मंत्रणा के बाद इस आतंकवादी घटना के खिलाफ एक्शन लेना प्रारंभ कर दिया।

यह हमला पाकिस्तान की बौखलाहट का नतीजा है, उसी के इशारे पर किया गया। यह मानने के पुख्ता एवं पुष्ट कारण हैं कि पाकिस्तान सुलगते बलूचिस्तान से दुनिया का ध्यान हटाना चाहता है। और उसे यह रास नहीं आ रहा कि कश्मीर में स्थितियां तेजी से सामान्य होती जा रही हैं। भारत को पाकिस्तान के शैतानी इरादों के प्रति और अधिक सतर्क रहना चाहिए था। वह न पहले भरोसे लायक था और न अब। अब आतंकियों को शह और सहयोग देने वाले पाकिस्तान को निर्णायक रूप से सबक सिखाया जाना ज्यादा जरूरी हो गया है।

तहव्वुर राणा का प्रत्यर्पण आतंकवाद के खिलाफ भारत की एक बड़ी जीत बनी है, जिससे भी पाकिस्तान भयभीत बना। मुंबई सहित देश के अन्य हिस्सों और विशेषतः जम्मू-कश्मीर में आतंकी हमले की पूरी प्लानिंग के पीछे पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई व उसकी जमीन पर सक्रिय आतंकवादी संगठनों का हाथ न केवल था, बल्कि आर्थिक एवं अन्य तरह का सहयोग भी शामिल है। पहलगाम की ताजा घटना हो या बार-बार होने वाली आतंकी घटनाएं तमाम सबूत होने के बाद भी पाकिस्तान इन हमले के पीछे अपनी कोई भूमिका होने से इनकार करता रहा है। हालांकि वह आतंकी संगठन लश्कर-ए-तैयबा के प्रमुख हाफिज सईद और जकी-उर-रहमान लखवी जैसे आतंकवादी सरगनाओं को बचाता भी रहा है। राणा के माध्यम पाकिस्तान का पूरा सच देश एवं दुनिया के सामने आने का डर पाकिस्तान को सता रहा था, तभी उसने इस पहलगाम की घटना को अंजाम दिया। लेकिन अब हद हो गयी। अब एक साथ कई मोर्चे पर आतंकवाद के खिलाफ कमर कसनी होगी, अब भारतीय सुरक्षा एजेंसियों का असली बड़ा काम यहां से शुरू करना होगा। अमेरिका राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने सीमा पार यानी पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद से लड़ने में भारत का साथ देने का संकल्प एकबार फिर दोहराया है, इसी तरह रूस भी भारत के साथ है। अनेक देशों ने भारत की आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में हर तरह से सहयोग का वादा किया है। अब समय आ गया है पाकिस्तान को उसकी जमीन दिखाने एवं उसके विध्वसंक एवं विनाशकारी मनसूबों को नेस्तनाबूंद करने का।

अब कश्मीर में आतंक का अंधेरा नहीं, शांति का उजाला होना ही चाहिए। दुनिया के शक्तिसंपन्न राष्ट्र भी मंथन करें आतंक रूपी विष और विषमता को समाप्त करने का, शांतिपूर्ण दुनिया निर्मित करने का। अब समय आ गया है कि पाकिस्तान में घूस कर सबक सिखाने का। सर्जिकल अटैक ही पुख्ता जबाव हो सकता है।

भारत दुनिया की तीसरी बड़ी अर्थ-व्यवस्था बनने की ओर अग्रसर है। भारत के बढ़ते कदमों को रोकने के लिए पाकिस्तान आतंकी संगठन और आतंक का सहारा ले रही हैं। लगातार असफलता से खीझे एवं बौखलाए हुए आतंकी कोई-न-कोई नई और अधिक खौफनाक आतंकी घटना को अंजाम देने में जुटे रहते हैं, हमारी सुरक्षा एजेंसियों को अधिक सतर्क ता बरतने की आवश्यकता है। ●

(ये लेखक के अपने दृष्टिकोण हैं)

रमेश सर्राफ धमोरा
वरिष्ठ स्तंभकार, राजस्थान

सशक्त पंचायतों से ही बनेगा विकसित राष्ट्र

भारत गांवो का देश है। यहां की बहुसंख्यक आबादी आज भी गांवों में रहती है। भारत के गांव ही देश की अर्थव्यवस्था की मुख्य धूरी है। इसीलिए कहा जाता है कि जब तक देश कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत नहीं होगी तब तक भारत विकसित राष्ट्र नहीं बन पाएगा। गांव में सुशासन स्थापित करने के लिए ही ग्राम पंचायत की स्थापना की गई थी। हमारे देश के नेताओं को ग्रामीण पृष्ठभूमि का पूरा ज्ञान था। इसलिए उन्होंने गांव के महत्व को समझकर ग्रामीण क्षेत्र के सर्वांगीण विकास के लिए पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना की थी। उनको पता था कि जब तक गांव मजबूत नहीं होंगे तब तक देश मजबूत नहीं होगा। गांव को मजबूत करने के लिए यहां मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध करवाना सबसे महत्वपूर्ण कार्य था।

आजादी के समय भारत के गांव बहुत पिछड़े हुए थे। देश के अधिकांश गांवों में मूलभूत सुविधाओं के नाम पर कुछ नहीं था। मगर आज गांवों की व्यवस्था भी बहुत कुछ बदल गई है। आज देश के बहुत से गांव में शहरों की भांति सुविधा देखने को मिल रही है। लेकिन आज भी देश में हजारों ऐसे गांव है जहां पर्याप्त मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध नहीं हो पाई है। जब तक सरकार देश के सभी गांव में समान रूप से सुविधा उपलब्ध नहीं करवा पाएगी तब तक देश विकास की दौड़ में पूरी गति से शामिल नहीं हो पाएगा। हम आज पंचायती राज दिवस मना रहे हैं। हमारे देश में 2 अक्टूबर 1959 को पहली बार पंचायती राज व्यवस्था लागू की गई थी। 1993 में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ था।

राष्ट्रीय पंचायती राज दिवस भारत में बहुत महत्व रखता है क्योंकि यह एक संवैधानिक इकाई के रूप में पंचायती राज प्रणाली की स्थापना का प्रतीक है। पंचायती राज प्रणाली भारत की लोकतांत्रिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसका उद्देश्य स्थानीय स्तर पर सत्ता और संसाधनों

का विकेंद्रीकरण करना और सहभागी लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और समावेशी विकास को बढ़ावा देना है। पंचायती राज प्रणाली जमीनी स्तर पर लोगों को निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में भाग लेने और उनके विकास का स्वामित्व लेने में सक्षम बनाती है, जो स्व-शासन और जवाबदेही को बढ़ावा देने में मदद करती है।

भारत गांवों का देश माना जाता है और गांव के विकास में पंचायतों की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चूंकि ग्राम पंचायतों के पंच व सरपंच सीधे ग्रामीणों द्वारा चुने जाते हैं। इसलिए निर्वाचित जनप्रतिनिधियों का अपनी ग्राम पंचायत क्षेत्र के लोगों से सीधा संपर्क रहता है। ग्रामवासी भी अपनी समस्याएं सीधे पंचायत तक पहुंचा सकतें है। मगर ग्राम पंचायतों की स्थापना के इतने वर्षों के बाद भी अभी तक ग्राम पंचायते वास्तविक रूप में सशक्त नहीं हो पाई है। ग्राम पंचायतें पूरी तरह राज्य सरकारों पर निर्भर है। कहने को तो ग्राम पंचायतों को बहुत सारे अधिकार प्रदान किए गए हैं। मगर आज तक भी अपने अधिकारों का ग्राम पंचायतें प्रयोग नहीं कर पाती है। आज भी देश की अधिकांश ग्राम पंचायतों में सरकारी अधिकारी, कर्मचारी प्रभावी रहते हैं।

ग्राम पंचायतों में आरक्षण व्यवस्था लागू होने के कारण बड़ी संख्या में महिलाएं पंच, सरपंच निर्वाचित होकर आती है। उनमें से कई महिलाएं तो वास्तव में बहुत अधिक पढ़ी लिखी होने के कारण पूरी जानकारी रखती है। इस कारण वह अपने अधिकारों का पूरा प्रयोग कर लेती है। मगर अधिकांशतः आरक्षण के कारण गांवो में प्रभावी नेता अपने परिवार की किसी महिला को पंच, सरपंच बनवा देते हैं। फिर उनके स्थान पर खुद नेतागिरी करते हैं। वहां की निर्वाचित महिलाएं मात्र कागजी जनप्रतिनिधि बन कर रह जाती है। बहुत से स्थानों पर तो महिला सरपंचों के हस्ताक्षर भी उनके स्थान पर काम करने वाले उनके परिजनों द्वारा ही कर दिए जाते हैं। ऐसी स्थिति में पंचायत राज व्यवस्था के मजबूत होने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती है। सरकार बार-बार परिपत्र जारी कर सरपंच के प्रतिनिधियों को पंचायतों के कार्यों में हस्तक्षेप करने से मना करती है। मगर धरातल में सरकार के परिपत्र मात्र कागजी बन कर रह जाते हैं।

पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से महिलाओं का जीवन बहुत प्रभावित हुआ है। सही मायने में पंचायती राज ने महिलाओं को समाज का एक विशेष सदस्य बना दिया है। लाखों महिलाऐं सार्वजनिक जीवन में आयी हैं। लेकिन अधिकतर निर्वाचित महिलाओं को निर्वाचक सदस्य होने के विषय में पूर्ण जानकारी भी नहीं है। अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता की कमी के कारण वह प्रभावी नहीं हो पाती हैं। तथा उन्हे यह भी ज्ञान नहीं होता है कि वह एक कुशल प्रशासक भी हो सकती हैं।

घूंघट में रहना लोकतंत्र और औरत जाति के लिए एक चुनौती है। समय के साथ बहुत कुछ बदल गया है लेकिन औरतो के प्रति लोगों की सोच अभी तक नहीं बदली है। राजनीति घूंघट में रह कर नहीं हो सकती। इसके लिए बेबाक होना पड़ता है। जब औरतें किसी कार्यक्रम में मंच पर घूंघट निकाल कर बैठेंगी तो वहां के हालात बड़े अजीबोगरीब हो जाते हैं। औरतों को अपने से कमतर मानने की सोच के चलते ही उन के चेहरे से परदा नहीं हट पा रहा है। लोकतंत्र की सबसे छोटी संसद पंचायती राज में हालांकि महिलाएं 50 फीसदी सीटों पर काबिज हैं। लेकिन इन महिला जनप्रतिनिधियों में से कई पढ़ी-लिखी होने के बाद भी ग्राम पंचायत की मिटिंगों में घूंघट में बैठी रहकर जुबान ही नहीं खोलतीं है।

क्या ऐसी स्थिति के लिए ही पंचायत राज को मजबूती देने का निर्णय किया गया था। क्या इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने के बाद भी हमारे देश की महिला जनप्रतिनिधियो को घूंघट की ओट में ही जीने को विवश होना पड़ेगा। यह एक बड़ा सवाल है जिसे ना सिर्फ प्रशासनिक अधिकारियो को गंभीरता से लेना पड़ेगा बल्कि राजनेताओ व प्रशासनिक अधिकारियों को भी सरपंच पतियो के बढ़ते हस्तक्षेप पर प्रभावी अंकुश लगाना होगा। औरतों के सिर से घूंघट हटाने के लिए लड़कियों के मातापिता को आगे आना होगा। उन्हें अपनी बेटियों की शादी उसी परिवार में करनी चाहिए जहां घूंघट का बंधन नहीं हो। घूंघट में रह कर औरतें अपनी जिंदगी के तानेबाने को कैसे बुन सकती हैं? घूंघट में रह कर राजनीति या समाजसेवा नहीं की जा सकती।

आज के समय में ग्राम पंचायते पैसे कमाने का जरिया बन गई है। पंचायत चुनाव में बड़ी मात्रा में पैसे खर्च होते हैं। चुनाव जीतने के बाद निर्वाचित सरपंच द्वारा जनसेवा के बजाय पैसे कमाने पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इस कारण निर्वाचित जनप्रतिनिधि ग्राम पंचायत के सामाजिक सरोकार के कामों को भूल कर निर्माण कामों में व्यस्त हो जाते हैं। अपनी पंचायत में अधिक से अधिक निर्माण कार्य स्वीकृत करवाने के लिए सरपंच विधायकों, सांसदों के चक्कर काटते रहते हैं। जिस कारण वह उनके दबाव में काम करते हैं। पंचायती राज व्यवस्था को सही मायने में सशक्त बनाने के लिए सरकार को सभी प्रकार के निर्माण कार्य ग्राम पंचायतों से हटाकर संबंधित विभागों से करवाया जाना चाहिए ताकि सरपंच जनता से जुड़ कर उनकी समस्याओं का सही मायने में समाधान करवा सकें। ●

फैशन का बदलता ट्रेंड

मोनिका सिन्हा
फैशन टेक्नालॉजी, मुंबई

फैशन का अर्थ केवल वस्त्र पहनने के तरीके से नहीं होता, बल्कि यह एक जीवनशैली है जो समाज, संस्कृति और समय के साथ बदलती रहती है। फैशन वह प्रवृत्ति है, जिसे किसी विशेष समय में समाज का एक बड़ा वर्ग अपनाता है। इसमें वस्त्र, आभूषण, जूते, केश विन्यास, बोलचाल, व्यवहार, यहां तक कि सोचने का तरीका भी शामिल हो सकता है।

आधुनिक युग में फैशन के रुझान बहुत तेजी से बदलते हैं। इंटरनेट, सोशल मीडिया, ग्लोबलाइजेशन और जनसंचार के साधनों ने इन रुझानों को वैश्विक स्वरूप दे दिया है। फैशन अब केवल पेरिस, मिलान या न्यूयॉर्क तक सीमित नहीं है, बल्कि अब यह हर छोटे बड़े देशों तक फैल चुका है। महानगर से लेकर कस्बाई शहरों तक इसकी उपस्थिति को महसूस किया जा सकता है।

फैशन हमेशा समाज की मानसिकता, राजनीति, अर्थव्यवस्था और विचारधाराओं का प्रतिबिंब रहा है। 1960 के दशक में हिप्पी आंदोलन, 1980 के दशक में पॉप कल्चर, 1990 में मिनिमलिज्म और 21वीं सदी में ग्लोबल डिजिटल युग इन सभी ने फैशन को प्रभावित किया। आज की पीढ़ी फैशन को अपनी पहचान, स्वतंत्रता और जागरूकता का माध्यम मानती है। आधुनिक फैशन अब 'ट्रेंड फॉलो करना' भर नहीं रह गया है, बल्कि वह 'पर्सनैलिटी एक्सप्रेशन' और 'सस्टेनेबल स्टाइल' की ओर बढ़ गया है। आज के समय में फैशन का स्वरूप अत्यंत विविधतापूर्ण और गतिशील हो गया है। तकनीक, पर्यावरण, और ब्रांड इन सभी तत्वों ने मिलकर फैशन के

रुझानों को नया रूप दिया गया है-

जेंडर फ्लूइड फैशन : इसके अन्तर्गत लैंगिक सीमाओं को तोड़ते हुए अब पुरुष और महिलाएं पारंपरिक परिधानों से परे जाकर कपड़ों का चयन कर रहे हैं। स्कर्ट पहनने वाले पुरुष मॉडल, सूट पहनती महिलाएं या 'यूनिसेक्स' संग्रह यह सब फैशन के लोकतांत्रिक होते जाने का प्रमाण हैं।

सस्टेनेबल और इको-फ्रेंडली फैशनःपर्यावरण संकट और उपभोक्तावाद के प्रतिघात ने 'सस्टेनेबल फैशन' की मांग को बढ़ा दिया है। अब उपभोक्ता यह देखता है कि जो कपड़ा वह पहन रहा है वह किस फैब्रिक से बना है, वह प्रकृति के लिए सुरक्षित है या नहीं, उसे बनाने में बाल श्रम या अत्यधिक जल का प्रयोग तो नहीं हुआ।

डिजिटल फैशन और मेटावर्स स्टाइलिंगः वर्चुअल फैशन अब केवल भविष्य की कल्पना नहीं रह गया। कई ब्रांड डिजिटल आउटफिट्स बना रहे हैं जिन्हें लोग अपने अवतार पर पहनते हैं। इतना ही नही नॉन-फिज़िकल फैशन एक नया क्रांतिकारी क्षेत्र बन चुका है।

रीसाइक्लिंग और अप साइक्लिंग ट्रेंड्सःपुराने कपड़ों को नए रूप में प्रस्तुत करना अब फैशन की जागरूकता बन गई है। बॉलीवुड और हॉलीवुड दोनों में कई सितारे पुराने वस्त्रों को नए तरीके से स्टाइल करके उसे फैशन स्टेटमेंट बना रहे हैं।

बॉडी पॉज़िटिविटी और इन्क्लूसिव फैशनः अब फैशन केवल जीरो फिगर या छरहरे शरीर वालों के लिए नहीं है। हर आकार, रंग, आयु और लैंगिक पहचान के लिए डिजाइन्स बनाए जा रहे हैं साथ ही अब मॉडल्स में भी विविधता दिखाई दे रही है ,मोटे, बुजुर्ग, दिव्यांग और मॉडल अब रैंप पर दिखते हैं।

आरामदायक स्टाइलः कोविड-19 महामारी के बाद 'होमवेयर', 'एथलीजर' और 'लाउंजवियर' लोकप्रिय हो गए। अब फैशन में स्टाइल के साथ-साथ आराम भी प्राथमिकता बन चुका है ।जब हम आज फैशन को लेकर भारत और पश्चिम देशों की तुलना करते हैं तो ऐसा लगता है कि भारत और पश्चिम के फैशन में एक ओर जहाँ कई समानताएँ हैं, वहीं दूसरी ओर गहरे अंतर भी हैं।

पश्चिमी दुनिया में फैशन अधिक इंडीविजुअलिस्टिक, प्रयोगधर्मी और ट्रेंड-निर्धारक है। पेरिस, न्यूयॉर्क, मिलान और लंदन के फैशन वीक्स वैश्विक फैशन उद्योग के केंद्र हैं,यहां डिजाइनर प्रयोगों से नहीं घबराते और रचनात्मकता को प्राथमिकता देते हैं। पश्चिमी फैशन में 'फंक्शन ओवर फॉर्म' यानी कार्यशीलता की भावना प्रबल होती है।

भारत में फैशन सांस्कृतिक विविधता, परंपरा और आधुनिकता के संगम पर खड़ा है। एक ओर जहां जारा, एच एंड एम, लुई विटॉन जैसे ब्रांड्स शहरी युवाओं को आकर्षित करते हैं, वहीं दूसरी ओर बनारसी साड़ी, चिकनकारी, बंधेज, ब्लॉक प्रिंट जैसे पारंपरिक परिधान भी उतने ही लोकप्रिय हैं। भारतीय फैशन का वैश्विक विस्तार भी उल्लेखनीय है। रितु बेरी, मनीष मल्होत्रा, सब्यसाची मुखर्जी, राहुल मिश्रा जैसे डिजाइनर्स ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय परिधानों की प्रतिष्ठा बढ़ाई है ।मीडिया और सिनेमा का फैशन पर व्यापक प्रभाव रहा है। हॉलीवुड और बॉलीवुड की हस्तियां ट्रेंड सेटर्स बन चुकी हैं। दीपिका पादुकोण की कान्स उपस्थिति या रिहाना की मेट गाला लुक झ ये केवल सौंदर्य प्रदर्शन नहीं, बल्कि विचार और स्टाइल की घोषणाएं होती हैं।

इंस्टाग्राम और टिकटॉक जैसे प्लेटफॉर्म्स ने अब हर व्यक्ति को स्टाइल आइकन बनने का अवसर दिया है। आज के इन्फ्लुएंसर अपने फैशन से ब्रांड्स को लोकप्रिय बना रहे हैं।

बायोफैब्रिक्स और स्मार्ट फैब्रिकः कपड़ों में अब ऐसे तत्वों को शामिल किया जा रहा है जो पसीना को सोख सकें,तापमान नियंत्रित करें या शरीर की गतिविधियों पर प्रतिक्रिया दें। यह फैशन और तकनीक का विलय है।

सांस्कृतिक पुनर्जागरण और लोकल स्टाइल्सः आज फैशन की दुनियां में स्थानीय परंपराओं, कारीगरों और कला को फैशन में फिर से स्थान देने का ट्रेंड चल पड़ा है।

कस्टमाइजेशन भविष्य का मूलमंत्र : अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि चाहे वह डिजाइन हो, कलर, कट या फेब्रिक उपभोक्ता अब अपने फैशन में हस्तक्षेप और हिस्सा चाहता है।

फैशन थैरेपी और मेंटल हेल्थ कनेक्शनः फैशन अब मानसिक स्वास्थ्य के लिए एक साधन भी बनता जा रहा है। रंगों, कपड़ों की बनावट और डिजाइन से व्यक्ति को मानसिक संतुलन और आत्मविश्वास मिलने लगा है।

पश्चिम के खुलेपन और भारत की परंपरा में, फैशन ने दोनों ही धारणाओं को आत्मसात किया है। आज फैशन के साथ-साथ एक तरह की जिम्मेदारी समय की मांग है। आने वाले समय में फैशन न केवल शरीर को ढंकने का माध्यम रहेगा, बल्कि अपने व्यक्तितव को अभिव्यक्त करने का एक सुंदर प्रयास बनेगा। ●

(ये लेखिका के अपने विचार हैं)

(लेखिका इंस्टीट्यूट ऑफ डिजाइनिंग एंड फैशन टेक्नोलॉजी, मुम्बई की निदेशक हैं)

अलगाव दूर करने में भाषा सहायक

डॉ.सत्येंद्र सिंह

विश्व में भारत अकेला ऐसा देश नहीं है, जहां राष्ट्रभाषा न हो और कई राजभाषाएं हों। विश्व में 150 के लगभग ऐसे देश हैं, जिनके संविधान में किसी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया गया है, शेष में नहीं। लगभग 77 ऐसे देश हैं, जिनकी एक ही राजभाषा है। लगभग 101 देशों में कई भाषाएं राजभाषा के रूप में मान्य हैं। जिन बड़े देशों में राष्ट्रभाषा नहीं है उनमें संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, इरिट्रिया, लक्जमवर्ग, स्वीडन जैसे देश भी शामिल हैं। भारत तो एक बहुभाषी, विविध संस्कृतियों वाला एक समृद्ध देश है। आज विश्व में सर्वोच्च 16 ऐसी भाषाएं हैं, जिनका व्यवहार 5 करोड़ या इससे अधिक लोग करते हैं। इनमें हैं - अरबी, अंग्रेजी, इतालवी, उर्दू, चीनी परिवार, जर्मनी, जापानी, तमिल, तेलुगु, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, बंगाली, मलय-बहासा(भाषा), रूसी, स्पेनी और हिंदी। हमारे लिए यह गर्व की बात है कि विश्व की 16 भाषाओं में 05 भारतीय भाषाएं हैं।

भारत में हिंदी केंद्र सरकार की राजभाषा है और केंद्र सरकार से तात्पर्य केवल दिल्ली स्थित संसद व उसके मंत्रालय ही नहीं है, बल्कि केंद्र सरकार

के सभी अधीनस्थविभाग व कार्यालय, निगम, कंपनी, आयोग, प्राधिकरण, अधिकरण आदि हैं चाहे वे किसी भी प्रांत में स्थित हों और प्रत्येक प्रांत सरकार व उसके अधिनस्थ कार्यालयों द्वारा पत्रचार उसी भाषा में करना है जिस भाषा में केंद्र सरकार के साथ होता है । केंद्र सरकार तो पूरे देश में अशरीरी व्याप्त अस्तित्व है, वरना तो सभी प्रांत हैं, भारत कहां है।

भौगोलिक आधार पर तो हिंदी विश्व भाषा है, क्योंकि इसके बोलने-समझने वाले संसार के सभी देशों में हैं।और आज की हिंदी ऐसे ही समृद्ध नहीं हुई है, उसके लिए उससे पहले की (हिंदी से पहले) उत्तर भारत की भाषाओं ने अपना बलिदान कर दिया, जिनमें संस्कृत, पाली, प्राकृत के साथ साथ डिंगल-पिंगल, ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेली, भोजपुरी, आदि जो जनभाषा और साहित्यिक भाषाएं थीं, खडीबोली हिंदी में विलीन हो गईं। अगर हिंदी के प्राचीन साहित्य पर नजर डालेंगे तो इन्हीं भाषाओं का साहित्य मिलेगा। एक ही लिपि होने के नाते अंतर का आभास नहीं हुआ और आमजन में कोई विरोध नहीं दिखाई दिया। आमजन में तो किसी भाषा का विरोध आज भी नहीं है। इसीलिए एकता भी है।

जहां तक भारत में हिंदी को राष्ट्रभाषा माने जाने का प्रश्न है तो सबसे पहले स्वामी दयानंद ने 1876 में हिंदी को राष्ट्रभाषा मान कर सत्यार्थ प्रकाश की रचना की, जबकि वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। उनकी मातृभाषा तो गुजराती थी, यह सभी जानते हैं। उनके बाद 1905 में बाल गंगाधर तिलक ने हिंदी को राष्ट्रभाषा माना और फिर महात्मा गांधी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा मानते हुए राष्ट्रभाषा समितियां ही स्थापित कर दीं। लेकिन इन सब बातों से पहले एक विचार उठता है कि हिंदवी स्वराज्य के जनक व संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज ने हिंदी को दक्खिनी हिंदी के रूप में प्रतिष्ठित किया था तो उसका स्वरूप कहां है। जब मराठा साम्राज्य अपगानिस्तान तक चला गया तो अपनी भाषा भी ले गया होगा। आज विद्वानगण कहते तो हैं कि अफगानिस्तान में मराठी की मौजूदगी है, लेकिन पुणे से अफगानिस्तान के बीच मराठी के चिह्न क्यों नहीं हैं, इस पर

दूसरा मत

हार्दिक शुभकामनाएं

पढ़ें और पढ़ाएं
दूसरा मत

एक शुभचिंतक, दिल्ली

खामोश क्यों रहते हैं। इस संबंध में खोज की गई होगी, जिसका मुझे पता न हो, यह हो सकता है लेकिन ब्रजभाषा और मराठी का साम्य अवश्य कुछ सोचने पर विवश करता है। मुगल काल में भारताय जन मानस छत्रपति शिवाजी महाराज की ओर आशाभरी नजरों से अवश्य देखता था, क्योंकि भारतीय अस्मिता के जो प्राण उन्होंने आमजन के दिलों में फूंके, वे किसी ने नहीं फूंके। अपना मौलिक शासन और शासन पद्धति, अपने आदर्श स्थापित करके उन्होंने देश को जो दिया वह आज भी इसीलिए वंदनीय है।

आज महाराष्ट्र, प्रदेश में प्राइमरी शिक्षा में हिंदी को मराठी के साथ साथ हिंदी को भी अनिवार्य भाषा के रूप में पढाने वाला पहला प्रांत बनने वाला था। लेकिन कुछ विरोध के कारण निर्णय बदलना पड़ा। और अब प्राइमरी से मराठी पहली और अंग्रेजी दूसरी अनिवार्य भाषा के रूप में पढाई जाएगी। और हिंदी वैकल्पिक रूप से तीसरी भाषा के रूप में पढाई जाएगी। तीसरी ही सही पहली कक्षा से हिंदी को वैकल्पिक भाषा के रूप में पढाने वाला महाराष्ट्र पहला प्रांत है। इस पर भी गर्व किया जा सकता है। चाहे अंग्रेजी अपने स्थान पर और स्थिर हो गई हो।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी विरोध क्यों हुआ या पनप रहा है, इसका कोई ठोस प्रमाण दिखाई नहीं देता, लेकिन विरोध तो है, साफ साफ दिखता है। विरोध हिंदी के प्रति ही नहीं एक प्रांतीय भाषा और दूसरी प्रांतीय भाषा के बीच भी दिख रहा है। हर प्रांत की सीमा भाषा विरोध में जल रही हैं। और यह भाषा विरोध व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति विरोध बन गया है। व्यक्ति की पहचान धर्म के बाद आज भाषा ही है। यही नहीं एक ही धर्म के लोगों के बीच अलगाव का कारण भाषा है।

हिंदी को राजभाषा बनाने के लिए तो मतदान नहीं हुआ। लेकिन हिंदी के स्वरूप अर्थात उसकी लिपि और अंकों के स्वरूप पर विचार में भिन्नता होने के कारण मतदान हुआ था, विशेषकर लिपि के लिए। हिंदी की लिपि के लिए तीन प्रस्ताव थे देवनागरी, रोमन और अरबी-फारसी। लिपि तय करने के लिए जिस दिन संविधान सभा की बैठक हुई उस दिन बैठक की अध्यक्षता राजगोपालाचारी जी कर रहे थे। बैठक में मतदान होने पर अरबी फारसी लिपि को तो ज्यादा मत नहीं मिले लेकिन देवनागरी और रोमन लिपि को बराबर बराबर मत मिले इसलिएबैठक के अध्यक्ष राजगोपालाचारी जी ने अपना अध्यक्षीय मत,जिसे कास्टिंग वोट कहते हैं, दिया और वह देवनागरी के पक्ष में दिया। कास्टिंग वोट होने पर होने वाले निर्णय को सवार्नुमति से या एकमत से पारित किया हुआ माना जाता हैऔर इसप्रकार देवनागरी लिपि को एकमत से हिंदी की लिपि स्वीकार किया गया। अंकों के स्वरूप का विवाद तो इसी बात से सुलझा लिया कि अंकों का आविष्कार भारत में हुआ था, जो यहां से यूरोप व पश्चिमी देशों में गए और प्रयोग होते होते आज का स्वरूप अख्तियार कर लिया है, जिन्हें अंग्रेजी अंक माना जाता है परंतु वे वास्तव में मूल रूप से भारतीय अंक हैं। इस प्रकार संविधान के भाग 17 में अनुच्छेद 343 में सर्व प्रथम यह लिखा गया कि हिंदी भारत संघ की राजभाषा होगी जिसकी लिपि देवनागरी होगी और अंक भारतीय अंकों का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप होगा। इसके बाद इस पर कभी विवाद नहीं हुआ। (हिंदी हम सबकी- शिवसागर मिश्र)।

झांसी के परम विद्वान विधिवेत्ता नेता रघुनाथ विनायक धुलेकर जी का पहला प्रस्ताव था कि हिंदी को भारत की राजभाषा बनाया जाए। और उसे सभी ने मान भी लिया। संविधान सभा के अंत में जब हिंदी को केंद्र की राजभाषा मान लिया तो धुलेकर जी बहुत प्रसन्न हुए और अपनी प्रसन्नता जाहिर करते हुए उन्होंने आग्रह किया कि पूरा संविधान अंग्रेजी में लिखा जा रहा है, वह ठीक है, लेकिन कम से कम राजभाषा संबंधी अनुच्छेदों को मूल रूप से हिंदी में लिखा जाए, तो अति उत्तम रहेगा। और उनका यह आग्रह भी मान लिया गया। राजभाषा संबंधी अनुच्छेद मूल रूप से हिंदी में लिखे गए। अब चूंकि पूरा संविधान अंग्रेजी में था तो हिंदी में लिखे गए अनुच्छेदों का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। अंग्रेजी

विद्वान अनुवादक ने एकमत की अंग्रेजी एमॉनीमस की जगह सिंगल वोट लिख दिया। यह जानबूझ कर लिखा या अज्ञानतावश यह पता नहीं चलता। लेकिन अनुवाद पर किसी ने ध्यान नहीं दिया, संविधान छप गया। इस तरह एकमत और एक मत ने विवाद ही नहीं बहुत बड़ा भ्रम पैदा कर दिया, जिसे किसी ने आज तक स्पष्ट भी नहीं किया, न दूर करने का प्रयास।

हिंदी विरोध के पीछे दूसरा कारण थोडा लोगों के भविष्य से जुडा हुआ लगता है। संविधान में 15 वर्ष तक अंग्रेजी का उपयोग करने की छूट समाप्त होने का जैसे जैसे समय नजदीक आ रहा था वैसे वैसे हिंदी का विरोध शुरू हो गया, विशेष कर तमिलनाडु में।

अंग्रेजी विरोधी आंदोलन से अंग्रेजी को तो कोई फर्क नहीं पड़ा लेकिन उत्तर प्रदेश में अंग्रेजी विषय को ऐच्छिक कर दिया गया, अंग्रेजी साहित्य और अंग्रेजी भाषा। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजी साहित्य के स्थान पर अंग्रेजी भाषा विषय अधिकांश विद्यार्थी लेने लगे, क्योंकि वे सोचते थे कि अब तो परीक्षाएं हिंदी माध्यम से भी होंगी, इसलिए अंग्रेजी में निष्णात होने की क्या जरूरत। इससे उनका नुकसान यह हुआ कि वे अंग्रेजी भाषा में कमजोर हो गए। और उच्च पदों की नौकरी उनसे और दूर हो गई, क्योंकि परीक्षाओं का अंग्रेजी माध्यम ज्यों का त्यों था।

यह निर्विवाद तथ्य है कि दक्षिण भारत के राज्यों के विद्यार्थी पहले से अंग्रेजी भाषा पर अच्छा अधिकार रखते थे। और उच्च पदों की नोकरी सर्वाधिक पाते थे, जबकि उत्तर और मध्य भारत के राज्यों के विद्यार्थी अंग्रेजी पर उतना अधिकार नहीं रखते थे। और उच्च पदों पर नौकरी कम पाते थे।

राजभाषा हिंदी की प्रगति का जायजा लेने के लिए उच्चस्तरीय संसदीय राजभाषा समिति गठित है, जो सीधे राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट सौंपती है। यह समिति तमाम रिपोर्ट सौंप भी चुकी है। केवल केंद्र सरकार के कार्यालयों तक ही वह सीमित है। इन रिपोर्टों में संसदीय समिति ने क्या सिफारिशें की हैं। और उनमें से कितनी सिफारिशों पर कार्रवाई हुई है, इससे आम लोगों से कोई संबंध है या नहीं, पता नहीं परंतु भाषा तो आमजन के लिए ही है और उसका उससे संबंध होना चाहिए।

फिर भी प्रश्न उठता है कि हिंदी क्यों सीखें। अपनी भाषा की समृद्धि के लिए हिंदी सीखें। हिंदी की समृद्धि के लिए हिंदी सीखें। देश की एकता और उसके अस्तित्व के लिए हिंदी सीखें। देश से अलगाव समाप्त करने के लिए हिंदी सीखें।

यह न भूलें कि जब आप विदेश में होते हैं, तो आपकी भाषा हिंदी ही मान जाती है, चाहे आप चाहें या न चाहें। भारतीय रेल सबसे बडी देश की एकता का प्रमाण है। किसी हिंदीतर भाषी प्रांत से निकलकर कोई रेल के डब्बे में बैठता है, तो उसे पता ही नहीं चलता कि वह किस प्रांत से गुजर रहा है। और कब अपने सहयात्रियों से हिंदी में बात करने लगा। इसीसे समझ में आता है कि भारत में कोई भाषा विवाद नहीं है। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

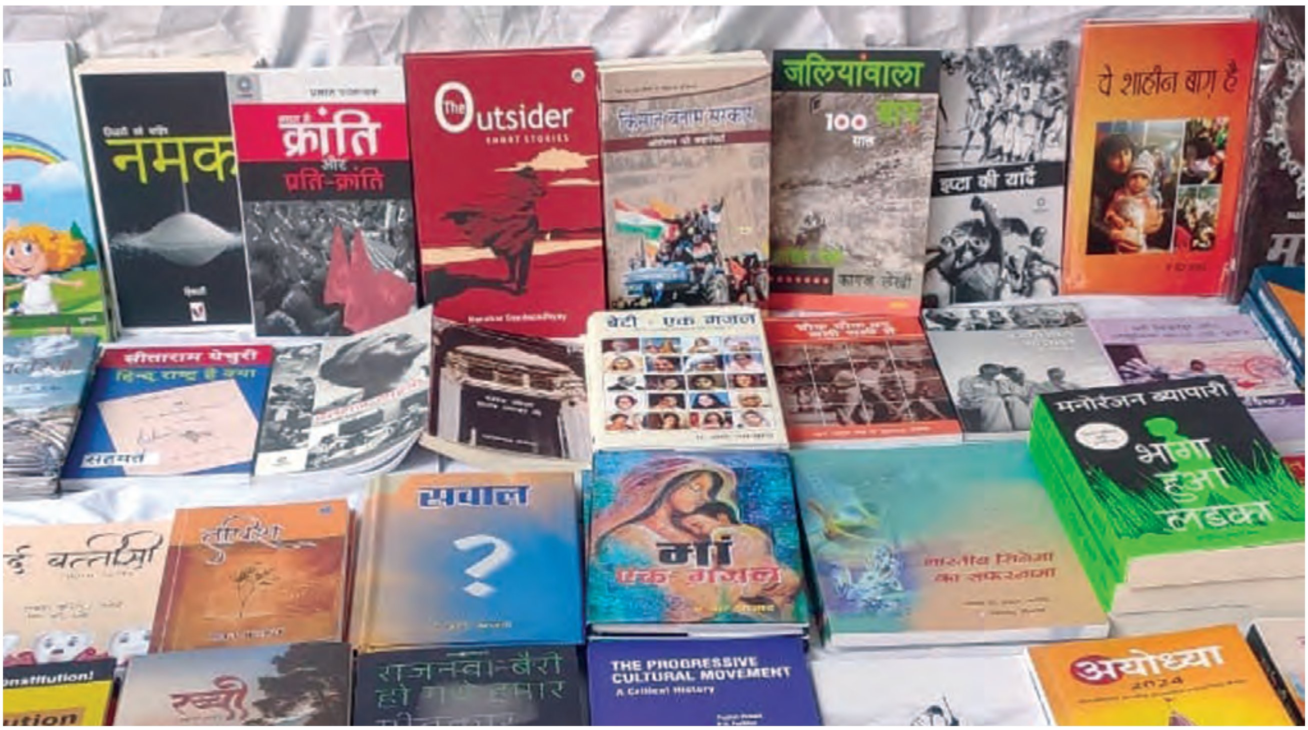

कॉपीराइट

योगेश कुमार गोयल

आज के डिजिटल युग में, जब सोशल मीडिया, मोबाइल एप्स और त्वरित सूचना के स्रोत हमारे चारों ओर फैले हुए हैं, ऐसे समय में किताबों की प्रासंगिकता और उनके महत्व को नए सिरे से समझना पहले से कहीं अधिक आवश्यक हो गया है। पुस्तकों का संसार एक ऐसा अद्भुत संसार है, जो न केवल ज्ञान देता है, बल्कि भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं को भी नई रोशनी प्रदान करता है।

यूनेस्को ने1995 में शुरू इसे किया। यह दिवस लेखकों, प्रकाशकों और पाठकों को एक साझे मंच पर लाकर पुस्तकों के संरक्षण और उनके प्रचार-प्रसार की दिशा में वैश्विक प्रतिबद्धता को दशार्ता है। दरअसल, 23 अप्रैल का दिन विश्वप्रसिद्ध साहित्यकार विलियम शेक्सपियर, मिगुएल दे सर्वांतेस तथा स्पेनी लेखक इंका गार्सिलासो दे ला वेगा की पुण्यतिथि का प्रतीक है। यह दिन इस विचार से जुड़ा है कि पुस्तकें किसी देश अथवा भाषा तक सीमित न रहकर विश्व सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा होती हैं। आज जब सूचना के स्रोतों की भरमार है, तब पुस्तक पढ़ने की संस्कृति

तेजी से क्षीण होती जा रही है। बच्चों से लेकर युवाओं और वयस्कों तक, हर कोई डिजिटल उपकरणों से इतना जुड़ गया है कि पुस्तकों को समय देना अब एक 'पुरानी आदत' मानी जाने लगी है।

विश्व पुस्तक दिवस का उद्देश्य लोगों में पुस्तकों के प्रति लगाव बढ़ाना, लेखकों और प्रकाशकों को वैश्विक सम्मान देना, कॉपीराइट जैसे संवेदनशील विषयों पर जागरूकता फैलाना और पढ़ने की आदत को जीवन का हिस्सा बनाना है।

यह सर्वविदित है कि पढ़ना न केवल ज्ञानार्जन का माध्यम है, बल्कि यह ध्यान केंद्रित करने, सोचने की क्षमता बढ़ाने, कल्पनाशीलता को विकसित करने और भावनात्मक बुद्धिमत्ता को सुदृढ़ करने में भी सहायक है। जब हम किसी पुस्तक के पन्ने पलटते हैं, तो हमारा मस्तिष्क लेखक की कल्पनाओं में प्रवेश करता है, चरित्रों से जुड़ता है और किसी कथा को गहराई से समझने का प्रयास करता है। यह प्रक्रिया मस्तिष्क की उन क्षमताओं को विकसित करती है, जो यंत्रवत सूचना को केवल ग्रहण करने से नहीं हो सकतीं।

इस विषय में विभिन्न न्यूरो-साइकोलॉजिकल शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि नियमित रूप से पुस्तक पढ़ने वाले बच्चों की स्मरण-शक्ति, संज्ञानात्मक कौशल और भाषा दक्षता, उन बच्चों की तुलना में कहीं बेहतर होती है, जो अधिकांश समय स्क्रीन पर बिताते हैं।

भारत में पुस्तक संस्कृति के गिरते ग्राफ को लेकर सबसे बड़ी चिंता यह है कि देश की बहुसंख्यक युवा आबादी की पढ़ने की आदत तेजी से घट रही है। अध्ययन बताते हैं कि औसतन एक भारतीय प्रति वर्ष केवल दो या तीन किताबें ही पढ़ता है। यह संख्या विकसित देशों की तुलना में काफी कम है।

हालांकि, भारत में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास और केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय जैसे संस्थान नियमित रूप से पुस्तक मेलों का आयोजन करते हैं। प्रश्न यह है कि क्या यह आयोजन आम जनमानस के भीतर पुस्तकों के प्रति दीर्घकालिक लगाव उत्पन्न कर पाता है?

एनबीटी की 2024 की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में बाल साहित्य की बाजार हिस्सेदारी लगभग 26 प्रतिशत तक पहुंच चुकी है। लेकिन इस साहित्य का ग्रामीण क्षेत्रों और सरकारी स्कूलों में व्यापक प्रसार अब भी सीमित है। बच्चों को बाल साहित्य तक पहुंचाने के लिए स्कूलों और सार्वजनिक पुस्तकालयों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'यू डायस प्लस 2022-23' रिपोर्ट के अनुसार, भारत के सरकारी और निजी स्कूलों के पुस्तकालयों में प्रति छात्र औसतन 3.8 पुस्तकें उपलब्ध हैं। आज जब देश शिक्षा के डिजिटलीकरण की दिशा में तेजी से अग्रसर है, तो यह और अधिक आवश्यक हो जाता है कि हम बच्चों को केवल स्क्रीन पर आश्रित न करें, बल्कि उन्हें संतुलित रूप से डिजिटल और मुद्रित सामग्री के संपर्क में लाएं। वहीं स्कूली पाठ्यक्रमों में रोचक और प्रेरणादायक साहित्य को समाविष्ट करने, स्थानीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण बाल साहित्य प्रकाशित करने और पुस्तकालयों को नवाचार केंद्र बनाने की आवश्यकता है। कॉपीराइट का मुद्दा भी इस दिवस का एक अहम पक्ष है। डिजिटल माध्यमों पर तेजी से हो रही साहित्यिक चोरी और मूल रचनाओं के अनधिकृत उपयोग ने लेखकों और प्रकाशकों को गंभीर संकट में डाल दिया है।

निःसंदेह, पुस्तकें किसी भी समाज की संवेदनशीलता, उसकी सोच, उसकी परंपराओं और उसकी आत्मा की संवाहक होती हैं। वे हमारे विचारों को दिशा देती हैं, नैतिकता की ओर प्रेरित करती हैं और आत्ममंथन की प्रक्रिया को जीवंत बनाए रखती हैं। आज आवश्यकता है कि हम व्यक्तिगत स्तर पर पढ़ने की आदत को पुनर्जीवित करें। बच्चों के साथ मिलकर पुस्तकें पढ़ना, स्कूली शिक्षा में पुस्तकालय पीरियड को अनिवार्य बनाना, सामुदायिक पुस्तकालयों को पुनर्जीवित करना, बुक क्लबों का गठन करना और पुस्तकों को उपहार स्वरूप देना- ये कुछ ठोस उपाय हैं जो पुस्तक-संस्कृति को पुनः जीवंत कर सकते हैं। पुस्तकें भविष्य निर्माण का औजार हैं। वे हमें हमारी जड़ों से जोड़ती हैं और हमें वह दृष्टि देती हैं, जो एक उत्तरदायी नागरिक के रूप में आवश्यक है। ●

आज के मजदूर और मजदूर दिवस

शम्भू शरण सत्यार्थी

जिस हिसाब से दुनिया बदली है, उस हिसाब से मजदूरों और कामगारों की स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। काम करने का जो 8 घण्टे का अधिकार मिला था वह भी आज धीरे धीरे समाप्त हो रहा है।

आज भी 12 घण्टा और सोलह घण्टा काम करने के लिए लोग बाध्य हो रहे हैं।मजदूरों को वास्तविक मजदूरी नहीं मिल रही है।

मजदूरों का संगठन आज समाप्ति के कगार पर है।इसकी वजह से मजदूर गोलबंद होकर किसी भी प्रकार की समस्या के लिए जोरदार ढंग से आवाज नहीं उठा पाते इसकी वजह से सामाजिक, मानसिक और आर्थिक शोषण जारी है। आज भी शारीरिक श्रम करने वाले लोगों को हेय दृष्टि से देखा जाता है।

हर साल 1 मई को अंतरराष्ट्रीय मजदूर दिवस मनाया जाता है।इसे मनाने का मुख्य उद्देश्य श्रमिकों के अधिकारों, उनकी मेहनत और योगदान को सम्मान देना है। यह दिन श्रमिक आंदोलनों की याद में मनाया जाता है, जो बेहतर कामकाजी परिस्थितियों, उचित वेतन, और श्रमिकों के अधिकारों के लिए लड़े गए थे।

मजदूर दिवस की शुरूआत 19वीं सदी में हुई, जब औद्योगिक क्रांति के दौरान श्रमिकों का शोषण आम था। लंबे समय तक काम, कम वेतन और असुरक्षित कार्यस्थल की समस्याओं ने श्रमिकों को एकजुट होने के लिए प्रेरित किया।मजदूर के बच्चे अपने पिता तक को नहीं पहचानते थे।इसका मुख्य कारण था कि जब बच्चे सोये रहते थे तो इनके पिता काम पर चले जाते थे और वे काम करके देर रात तक लौटते थे तो बच्चे सो जाते थे।अपने पिता को बच्चे देख तक नहीं पाते थे।

1 मई 1886 को अमेरिका में मजदूर संगठनों ने 8 घंटे के कार्यदिवस की मांग को लेकर एक राष्ट्रव्यापी हड़ताल शुरू की थी। उस समय मजदूरों को 12-16 घंटे तक काम करना पड़ता था, बिना किसी निश्चित छुट्टी के। शिकागो इस आंदोलन का प्रमुख केंद्र था, जहां हजारों मजदूरों ने कारखानों और सड़कों पर प्रदर्शन किए। यह हड़ताल शांतिपूर्ण थी, लेकिन बाद में तनाव बढ़ता गया।

1 मई की हड़ताल के बाद, 3 मई को शिकागो के मेकॉर्मिक हार्वेस्टिंग मशीन कंपनी के बाहर पुलिस और मजदूरों के बीच झड़प हुई, जिसमें पुलिस की गोलीबारी से दो मजदूर मारे गए।

इस हिंसा के विरोध में 4 मई को हेमार्केट स्क्वायर में एक शांतिपूर्ण रैली आयोजित की गई। रैली में मजदूर नेता, जैसे ऑगस्ट स्पाइज, भाषण दे रहे थे। जब पुलिस ने रैली को तितर-बितर

करने की कोशिश की, तो किसी अज्ञात व्यक्ति ने पुलिस पर डायनामाइट बम फेंका। इससे सात पुलिसकर्मी और कम से कम चार मजदूर मारे गए। इसके बाद पुलिस की गोलीबारी में कई अन्य लोग घायल हुए।

इस घटना के बाद शिकागो में भारी दमन हुआ। आठ मजदूर नेताओं (जिन्हें ‡हेमार्केट आठ‡ कहा गया) पर हत्या का मुकदमा चला, हालांकि उनमें से अधिकांश बम फेंकने के समय वहां मौजूद नहीं थे। चार को फांसी दी गई, एक ने जेल में आत्महत्या कर ली और बाकियों को बाद में माफी मिली।

हेमार्केट घटना ने मजदूर आंदोलन को वैश्विक स्तर पर प्रेरित किया। इसके परिणामस्वरूप 1889 में पेरिस में हुए दूसरे अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में 1 मई को 'अंतरराष्ट्रीय मजदूर दिवस' के रूप में मनाने का फैसला लिया गया।

यह घटना मई दिवस की नींव बनी, जो आज भी दुनिया भर में मजदूरों के अधिकारों के लिए मनाया जाता है।

भारत में मजदूर दिवस 1923 से मनाया जा रहा है। पहली बार लेबर किसान पार्टी ऑफ हिंदुस्तान ने मद्रास (अब चेन्नई) में इसकी शुरूआत की। भारत में यह दिन मजदूरों के योगदान को सम्मान देने और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए जागरूकता फैलाने का अवसर है।

यह दिन समाज में मजदूरों की मेहनत को पहचानने का मौका देता है। श्रमिकों को उचित वेतन, सुरक्षित कार्यस्थल, और सामाजिक सुरक्षा जैसे अधिकारों के लिए जागरूक करता है।

यह दिन श्रमिकों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाने और नीतियों में सुधार की मांग को प्रोत्साहित करता है।

इस अवसर पर मजदूर संगठन खासकर वामपंथी विचारधारा की पार्टियाँ रैलियां निकालते हैं और अपने अधिकारों की मांग करते हैं।

कई जगहों पर मजदूरों के सम्मान में सांस्कृतिक और सामाजिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

श्रमिकों के कल्याण और अधिकारों के लिए नीतियों को बढ़ावा देने के लिए अभियान चलाए जाते हैं।

मजदूर दिवस न केवल एक छुट्टी है, बल्कि यह एक अनुस्मारक भी है कि श्रमिकों का योगदान किसी भी समाज की रीढ़ है। यह हमें उनके संघर्षों को याद करने और उनके लिए बेहतर भविष्य सुनिश्चित करने की प्रेरणा देता है।

मजदूर दिवस हमें सिखाता है कि एकता और साहस के बल पर बड़े से बड़ा बदलाव लाया जा सकता है। मजदूरों ने अपने हक के लिए आवाज उठाई और न केवल अपने लिए, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी बेहतर भविष्य सुनिश्चित किया। आज मजदूर दिवस हमें याद दिलाता है कि हर मेहनतकश का सम्मान करना और उनके अधिकारों की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है।

मजदूर दिवस पर हमें न केवल अपने आसपास के श्रमिकों का आभार व्यक्त करना चाहिए, बल्कि यह भी संकल्प लेना चाहिए कि हम उनके कल्याण और सम्मान के लिए योगदान देंगे। एक छोटा-सा धन्यवाद, उनकी मेहनत की कद्र, या उनके अधिकारों के लिए आवाज उठाना भी इस दिन को सार्थक बना सकता है। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

एयर टैक्सी मतलब जाम से निजात!

विनायक चटर्जी
वरिष्ठ पत्रकार, स्तंभकार

आप एक ऐसे भविष्य की कल्पना करें जहां व्यस्त लोग, सड़कों की भीड़ को छोड़कर बिजली से संचालित होने वाली हवाई टैक्सियों में उड़कर घंटों के बजाय मिनटों में अपनी मंजिल तक पहुंचेंगे। गुरुग्राम से कनॉट प्लेस तक और मुंबई हवाई अड्डे से नरीमन प्वाइंट तक शहरी परिवहन का एक नया रूप सामने आने वाला है क्योंकि शहरों में की जाने वाली यात्रा की स्थिति में बदलाव लाने के लिए इलेक्ट्रिक-वर्टिकल-टेक ऑफ ऐंड लैंडिंग (ईवीटीओएलएस) एयरक्राफ्ट तैयार हैं जिन्हें एयर टैक्सी भी कहा जाता है।

नागर विमानन महानिदेशालय (डीजीसीए) के अनुसार वीटीओएलएस ऐसे विमान हैं जो गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों से चलते हैं जिनकी वजन ले जाने की अधिकतम क्षमता 5,700 किलोग्राम से कम होती है। इन्हें पायलट चलाते हैं और विजुअल उड़ान नियमों के तहत इनका संचालन दिन के समय तक ही सीमित होता है।

ये ईवीटीओएलएस बड़े ड्रोन की तरह दिखते हैं और इन्हें देखकर तैरते हुए बड़े बुलबुले की तस्वीर उभरती है। पारंपरिक विमानों को रनवे की आवश्यकता होती है लेकिन इसके उलट ये लंबवत तरीके से उड़ान भर सकते हैं और लैंड भी कर सकते हैं। ऐसे में ये उन घने शहरी वातावरण के लिहाज से उपयुक्त होते हैं जहां जगह सीमित है। ये विमान इलेक्ट्रिक प्रणोदक का इस्तेमाल करते हैं जिसके कारण ये पारंपरिक हेलिकॉप्टर की तुलना में ज्यादा पर्यावरण अनुकूल होते हैं। आधुनिक हवाई यातायात प्रबंधन प्रणालियों का मकसद सुरक्षित और कुशल संचालन सुनिश्चित करना है। समय के साथ ही पायलट रहित एयर टैक्सी के भी तैयार होने की उम्मीद है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एयर टैक्सी कारोबार तेजी से विकसित हो रहा है। दुबई 2026 तक चार वर्टिपोर्ट के साथ पूर्ण पैमाने पर इनका वाणिज्यिक संचालन शुरू करने के लिए तैयार है। वाणिज्यिक संचालन के लिए सक्रिय रूप से तैयारी करने वाले अन्य शहरों में लॉस एंजिलिस, न्यूयॉर्क, शिकागो, पेरिस और सिंगापुर शामिल हैं। कुछ शहर 2025 की अंतिम तिमाही की शुरूआत में ही इन टैक्सी का संचालन शुरू कर सकते हैं।

भारत का नियामकीय क्षेत्र भी ईवीटीओएलएस को समायोजित करने के लिए तैयार हो रहा है। डीजीसीए ने नियम तैयार करने और परिचालन फ्रेमवर्क बनाने के लिए छह विशेष कार्य समूहों का गठन किया है। प्रत्येक समूह को एक विशेष क्षेत्र पर ध्यान देना है जिनमें वर्टिपोर्ट (टेक ऑफ और लैंडिंग की जगह), विमान की किस्म का प्रमाणन, चालक दल की लाइसेंसिंग, परिचालन परमिट, हवाई यातायात प्रबंधन और एमआरओ (रखरखाव, मरम्मत, ओवरहॉल) तथा सुरक्षा पर ध्यान देना शामिल है।

इन कार्य समूहों की रिपोर्ट पेश की जा चुकी हैं और सितंबर 2024 में ड-ीजीसीए ने अपनी वेबसाइट पर एक व्यापक दिशानिर्देश जारी किए हैं जो सार्वजनिक रूप से उपलब्ध हैं। हालांकि आज तक कोई परिचालन लाइसेंस जारी नहीं किया गया है। डीजीसीए के साथ-साथ भारतीय निजी क्षेत्र भी इस तकनीक के साथ सक्रिय रूप से जुड़ा हुआ है। आईआईटी मद्रास से सहयोग पाने वाली ईप्लेन कंपनी ने अपने ईवीटीओएल विमान, ई200एक्स के लिए डीजीसीए से टाइप सर्टिफिकेशन मंजूरी पाने वाली पहली निजी भारतीय कंपनी बनकर इतिहास रच दिया है।

इसी तरह इंडिगो की मूल कंपनी, इंटरग्लोब एंटरप्राइजेज और अमेरिका की आर्चर एविएशन 2026 तक अपनी ईवीटीओएल सेवाएं शुरू करने की

तैयारी कर रही हैं। उबिफ्लाई टेक्नोलॉजीज और नलवा एरो सहित अन्य भारतीय स्टार्टअप भी ईवीटीओएल के लिए तैयार हो रहे हैं जबकि स्काईड्राइव और जेटसेटगो जैसे वैश्विक खिलाड़ी, भारत में वाणिज्यिक ईवीटीओएल मार्गों पर काम कर रहे हैं। उबिफ्लाई टेक्नोलॉजीज पहली निजी भारतीय कंपनी है जिसे एक इलेक्ट्रिक विमान के लिए डीजीसीए की ओर से डिजाइन ऑर्गनाइजेशन अप्रूवल मिला है।

इस तरह की सक्रियता देखते हुए प्रमुख भारतीय हवाई अड्डे वीटीओएल विमानों के लिए विशेष केंद्र के रूप में वर्टिपोर्ट बनाने की तैयारी कर रहे हैं जिनमें समर्पित एयरस्पेस कॉरिडोर, आधुनिक हवाई यातायात प्रबंधन प्रणाली और चार्जिंग स्टेशन शामिल हैं। ड्रोन और एयर टैक्सी जैसे कम ऊंचाई पर उड़ान भरने वाले विमानों के समन्वय के लिए विशेष हवाई यातायात नियंत्रकों के एक नए कैडर की भी आवश्यकता हो सकती है।

एक प्रमुख समस्या यह है कि सहायक बुनियादी ढांचे का विकास काफी कम हुआ है जो चिंता का विषय है। दरअसल इस क्षेत्र की वृद्धि वर्टिपोर्ट लोकेशन के रणनीतिक चयन पर निर्भर करती है। ये टेकऑफ और लैंडिंग साइट, अधिक मांग वाले क्षेत्रों, मुख्य रूप से शहरी केंद्रों और उनके आसपास के क्षेत्रों में मौजूद होने चाहिए। हालांकि सीमित शहरी जगहों, अचल संपत्ति की बढ़ती लागत और संवेदनशील क्षेत्रों के आसपास हवाई यातायात प्रतिबंध, विमान लैंडिंग जोन और पार्किंग सुविधाओं के निर्माण के लिए चुनौतियां पेश करते हैं।

एक और मुश्किल बिजली की आपूर्ति है। इलेक्ट्रिक वाहनों के इतर ईवीटीओएलएस बड़ी और भारी बैटरियों पर निर्भर हैं। परिचालन सुचारु रखने के लिए इन विमानों को जल्दी उड़ान के लिए तैयार करना होता है जिसके लिए 10-12 मिनट के भीतर ही तेज चार्जिंग की जरूरत होती है। इसके अलावा ईवीटीओएल बनाने वाली अलग-अलग कंपनियां अलग तरह की बैटरी का इस्तेमाल करती हैं जो उड़ान की दूरी और क्षमता को बेहतर बनाने के लिए डिजाइन की गई हैं। इन अलग-अलग चार्जिंग की जरूरतों को भी अवश्य पूरा करना होगा।

ऐसे में ईवीटीओएल को समर्थन देने के लिए नई श्रेणी के बुनियादी ढांचे को बनाने के लिए कई क्षेत्रों के जानकारों की जरूरत होगी जिसमें शहरी योजना, ऊर्जा प्रबंधन, वर्टिपोर्ट का निर्माण और नियामकीय विशेषज्ञता शामिल है। लेकिन इस नई तकनीक को शुरू करना आधी लड़ाई है, दूसरी आधी लड़ाई, लोगों द्वारा इसे स्वीकारने में है। पारंपरिक परिवहन विकल्पों की तुलना में किराया भी ज्यादा होने की उम्मीद है। ऐसे में सवाल यह है कि जिन यात्रियों के पास समय कम है वे भी ईवीटीओएलएस को अधिक किराया देने लायक समझेंगे? शुरूआती आकलन से अंदाजा मिलता है कि कनॉट प्लेस से गुरुग्राम तक की 7 मिनट की उड़ान में एक यात्री के लिए लगभग 4,500 रुपये का खर्च आ सकता है जबकि उबर की सवारी में करीब दो घंटे लगते हैं और लगभग 1,700 का खर्च आता है।

आलोचक यह आरोप लगा सकते हैं कि सरकार ऐसे समय में अमीरों का पक्ष ले रही है जब आम शहरी परिवहन व्यवस्था कई तरह की दिक्कतों से जूझ रही है। ऐसे में शुरूआती चर्चा, बुलेट ट्रेन परियोजना की शुरूआत के दौरान जाहिर की गई कुछ नकारात्मक धारणाओं की तरह ही होगी। अच्छी बात यह है कि एयर टैक्सी पहल शत-प्रतिशत निजी उद्यम होने की उम्मीद है जिसमें कोई सार्वजनिक खर्च नहीं होगा। उड़ान योजना ने पहले ही इस नजरिये को बदल दिया है जिसमें हवाई यात्रा को लक्जरी का माध्यम नहीं बल्कि कनेक्टिविटी के लिए एक आवश्यकता के रूप में देखा जा रहा है। इसके अलावा इलाज आदि के लिए आपातकालीन परिवहन एक बड़ा वरदान साबित होगा।

अंत में, ईवीटीओएल को एक एकीकृत परिवहन पारिस्थितिकी तंत्र के भविष्यवादी व्यवस्था के रूप में देखा जाना चाहिए। अगर यह शहरी आवागमन की मुश्किलों को आंशिक रूप से भी कम कर पाता है तो ईवीटीओएलएस अपना मकसद पूरा करने में कामयाब हो जाएगा। अब 2026 में पहली एयर टैक्सी की सवारी के लिए तैयार हो जाइए! ●

(लेखक इन्फ्राविजन फाउंडेशन के संस्थापक तथा प्रबंध न्यासी हैं। शोध में वृंदा सिंह का भी योगदान)

मोहभंग अब परदेस से

▶▶ विजय गर्ग, *वरिष्ठ स्तंभकार*

यह खबर चौंकाने वाली है कि बीते साल विदेश जाने वाले छात्रों की संख्या में 25 फीसदी की कमी आई है। जबकि अमेरिका जाने वाले छात्रों की संख्या में 36 और कनाडा जाने वाले छात्रों की संख्या में 34 फीसदी की कमी आई है। कमोबेश यही स्थिति ब्रिटेन की भी है। ये आंकड़े वर्ष 2024 के हैं। निश्चित तौर पर जब ट्रंप काल में उखाड़-पछाड़ के दौर के आंकड़े सामने आएंगे, तो वे ज्यादा चौंकाने वाले होंगे। एक समय था कि छात्रों में परदेस जाकर पढ़ाई करने का जुनून उफान पर था। हर साल मां-बाप खून-पसीने की कमाई से और अपना पेट काटकर बच्चों को पढ़ने के लिये विदेश भेज रहे थे। कहीं-कहीं तो खेत बेचकर और घर गिरवी रखकर बच्चों को विदेश पढ़ाने के लिए भेजने के मामले भी प्रकाश में आए।

दरअसल, देश में बैंकों से एजुकेशन लोन मिलने की सुविधा ने भी छात्रों की विदेश यात्रा को सुगम बनाया। हर साल लाखों छात्र सुनहरे सपने लिएविदेश गमन कर रहे थे। ये जुनून पंजाब में विशेष रूप से देखा गया, जो कनाडा-अमेरिका आदि देशों में संपूर्ण भारत से जाने वाले छात्रों का साठ फीसदी था। जरूरी नहीं था कि ये सारे छात्र मेधावी थे और सब दुनिया के शीर्ष विश्वविद्यालयों में दाखिला पा रहे थे। इनमें कई विश्वविद्यालय ऐसे भी थे जो सिर्फ विदेशी छात्रों से कमाई करने के मकसद से चलाए जा रहे थे। वहीं कुछ विश्वविद्यालय ऐसे भी थे जो अवैध रूप से लोगों को विदेश भेजने वाले एजेंटों की कमाई का जरिया बने हुए थे। युवाओं को छात्र के रूप में इन देशों में भेजकर मोटी रकम वसूली जा रही थी। दरअसल, धीरे-धीरे छात्रों और उनके अभिभावकों को हकीकत का अहसास होता चला गया। उन्होंने महसूस किया कि वे मोटा पैसा खर्च करके जैसे-तैसे डिग्री तो पा सकते हैं, लेकिन ये नौकरी व ग्रीन कार्ड की गारंटी नहीं है। हां, कुछ छात्र किसी तरह छोटे-मोटे काम-धंधे करके अपनी पढ़ाई का खर्चा व घर का कर्जा उतारने का जुगाड़ जरूर कर लेते थे।

दरअसल, धीरे-धीरे अमेरिका, ब्रिटेन व कनाडा सरकारों के दुराग्रहों व उनकी प्राथमिकताओं ने छात्रों को खुरदुरी जमीन के यथार्थ से रूबरू करा दिया। छात्रों को एजेंटों ने जो सब्जबाग दिखाए थे, उनकी हकीकत सामने आने लगी। इसके अलावा कोरोना काल के बाद बिखरती अर्थव्यवस्थाएं, नौकरी के आकर्षक प्रस्तावों में कमी, वीजा मिलने में हो रही दिक्कतें, इन देशों के गोरी चमड़ी वाले लोगों के भारतीयों पर बढ़े हमलों ने छात्रों में मोहभंग की स्थिति उत्पन्न कर दी। बीते साल अमेरिका में कई भारतीय छात्रों पर नस्लीय हमले हुए। कई छात्रों की हत्या हुई और अनेक घायल हुए। कनाडा व ब्रिटेन में भारत विरोधी अभियानों तथा कनाडा में जस्टिन ट्रूडो के भारत विरोधी रवैये ने भी छात्रों का मोहभंग किया। वैसे देखा जाए तो विदेशी मुद्रा अर्जित करने के बजाय हम हर साल अरबों रुपये इन देशों को भेज रहे थे। दूसरी ओर छात्रों के विदेश जाने के मोहभंग होने का सार्थक पहलू यह भी है कि अब ये प्रतिभाएं देश में रहकर राष्ट्र के विकास में योगदान दे सकती हैं। कुदरत का नियम है कि अपनी उर्वरा भूमि में ही पौधे अनुकूल वातावरण के चलते खिलते-निखरते हैं। ये हमारे नीति-नियंताओं की विफलता है कि आजादी के सात दशक बाद भी हम देश को अंतर्राष्ट्रीय मानकों वाले विश्वविद्यालय नहीं दे पाये। सामान्य शिक्षा में कौशल विकास के गुण को विकसित नहीं कर पाए। छात्रों में सरकारी नौकरियां पाने की लालसा को रचनात्मक विकल्प नहीं दे पाए।

अमेरिका की सिलिकॉन वैली से लेकर आईटी से जुड़ी तमाम बड़ी कंपनियों को भारतीय प्रतिभाएं चला रही हैं। आखिर क्यों हम भारतीय मेधाओं को देश में ऐसा वातावरण नहीं दे पा रहे हैं, कि वे नई खोजों व अनुसंधान से देश को लाभान्वित कर सकें। भारत दुनिया में सबसे ज्यादा युवाओं वाला देश है। यदि हम उनकी क्षमता,योग्यता और प्रतिभा का बेहतर उपयोग नहीं कर पा रहे हैं, तो यह हमारी बड़ी नाकामी है। देश के सत्ताधीशों को इस दिशा में गंभीरता से सोचना होगा कि क्यों छात्रों में विदेश जाने की होड़ लगी रहती थी। छात्रों को अनुकूल वातावरण देकर ही विकसित भारत के संकल्प पूरे हो सकते हैं। ●

अशोक गौतम
वरिष्ठ व्यंग्यकार

ड्रम पर निबंध

सरकारी स्कूल के हिंदी विषय के मास्टर जी बच्चों को आए दिन लव अफ़ेयर्स से लेकर करंट अफ़ेयर्स पर निबंध लिखवाते रहते हैं, ताकि वे भविष्य के बेरोज़गार युवाओं के बदले आकांक्षी युवाओं को तैयार कर सकें। आजकल के जीवन में ड्रम की बढ़ती उपयोगिता को देखते हुए कल उन्होंने अपनी क्लास को घर से ड्रम पर मौलिक निबंध लिख कर लाने को कहा। सुधी ड्रम प्रेमियों के समक्ष पेश है क्लास के हिंदी को स्वर्णकाल बनाने वाले सबसे होनहार छात्र का मौलिक, सारगर्भित निबंध-हमारे घर की हर चीज़ से दो दो काम लिए जाने की परंपरा है। उदाहरण के लिए मसाला कूटने के डंडे को ही ले लीजिए। ये मसाला कूटने के काम भी आता है, और शरारत करने पर हमें कूटने के काम भी।

इसी तरह थालियां खाने के सिवाय बजाने के काम भी आती हैं। जब पतीले में दाल ख़त्म हो जाती है, तो हम रोष प्रगट करते हुए खाने वाली थाली बजाने लग जाते हैं। हमारे घर में झाड़ू फ़र्श की सफ़ाई करने के काम ही नहीं आता। जब हम शरारत नहीं भी करते, तो वह बेकार में भी हमारी धुनाई करने के काम आता है। कई बार मां ग़ुस्से में आकर पिताजी को भी झाड़ू दिखा देती है, पर पता नहीं उन पर चलाती क्यों नहीं? अगर साफ़ शब्दों में कहूं तो हमारे घर में झाड़ू से सफ़ाई कम हमारी धुनाई ही अधिक होती है।

हमारे घर में चप्पल पहनने के काम ही नहीं आते। उनका भी हमारे घर में दोहरा प्रयोग होता है। हमारे घर में दो चप्पल के जोड़े हैं। और उन्हें पहनने वाले पांच। इसलिए वे इस साइज के लाए जाते हैं कि किसी को वे कुछ छोटे हों तो किसी को कुछ बड़े। कई बार तो कुछ पैरों को नंगे भी रहना पड़ता है। हम जिस घर से हैं, उसमें किसी न किसी को कहीं न कहीं से नंगे रहना आम है। चप्पल पहनने के साथ साथ जब हम बच्चे घर में कोई ग़लती करते हैं, वह खाने के काम भी आती है। एक चप्पल का जोड़ा तो पहनने के लिए कम, पीटने के लिए ज़्यादा प्रयोग होता है। पर वह प्लास्टिक का होने की वजह से उसे जितनी ज़ोर से मारा जाता है, उससे उतनी ज़ोर की चोट नहीं लगती।

हमारे घर में दो छोटे तीन बड़े ड्रम थे। अब सब छोटे छोटे हैं। एक ही साइज के। हमारे घर के नल में हफ़्ते बाद जल आता है। इसलिए पिताजी ने तीन बड़े बड़े ड्रम लाकर रखे थे। एक बड़ा ड्रम गुसलख़ाने में रखा गया था। ताकि जो हफ़्ता भर पानी न आए तो हफ़्ता भर उससे पानी लेकर मज़े से नहाया, शौचालय जाया जा सके। दूसरा बड़ा ड्रम किचन में रखा गया था। तीसरा बड़ा ड्रम बाहर क्यारियों में फूलों को पानी देने को रखा गया था। इसके अतिरिक्त हमारे घर में दो छोटे छोटे ड्रम भी हैं। इनमें सरकारी राशन की दुकान से मिले आटा चावल रखे जाते हैं।

कुछ दिन पहले पिताजी और मां ने कहीं भी सहमति न होने के बावजूद आपसी सहमति से बड़े बड़े ड्रम घर से हटा कबाड़ी को मुफ़्त में दे दिए। जबकि मां ख़ाली हुई टूथपेस्ट की ट्यूब तक कबाड़ी को मुफ़्त में नहीं देती। अब गुसलख़ाने में जो ड्रम लाकर रखा गया है, वह बहुत छोटा है। इतना छोटा कि उसमें हममें सबसे छोटी जो नर्सरी में है, उससे भी मुश्किल से ही बैठा जाता है। उसके पीछे छुपन-छुपाई खेलते हुए छुपा नहीं जा सकता। पहले वाले ड्रम के पीछे मज़े से छुपन-छुपाई खेलते छुप जाया करते थे। यही साइज किचन और बाहर क्यारियों में रखे ड्रमों का है। इस बारे में जब मैंने पिताजी से पूछा तो उन्होंने बताया कि इन दिनों समाज में ड्रम का भी बेलन, चप्पलों की तरह दूसरे कामों में उपयोग अधिक हो रहा है। गए वे दिन जब वे केवल पानी भरने के काम आते थे। आजकल वे पानी भरने को कम, दूसरे कामों को प्रयोग में अधिक लाए जा रहे हैं। या यूं कहूं कि उनका प्रयोग उस काम के लिए बिल्कुल कम हो गया है, जिस उद्देश्य को लेकर वे घर में लाए जाते थे। बड़े बड़े ड्रम आजकल सुरक्षित से अति सुरक्षित घरों में भी ख़तरनाक साबित हो रहे हैं। इनकी वजह से आपस में बहुत प्रेम करने वाले मम्मी-पापा भी अपने को एक दूसरे के हाथों असुरक्षित मान रहे हैं। ऐसे में घर जितना बड़ा हो, हो पर उस घर में ड्रम जितने छोटे होंगे, वह घर मम्मी डैडी के लिए उतना ही सेफ़ होगा। ●

सोलन-173212 हि.प्र.

संस्थान का यश बढ़ाती है पूर्ववर्ती स्टूडेंट्स की कामयाबी: नन्द किशोर यादव

हेल्थ इंस्टिच्युट,बेउर, पटना के पूर्ववर्ती छात्र-छात्राओं समागम हुआ। इस आयोजन में लंबे दिनों के बाद साथी एक दूसरे से जब मिले, तो सबके चेहरे खिल गए। इस अवसर पर बिहार के गणमान्य लोगों के बीच संस्थान के सर्वेसर्वा डॉ अनिल सुलभ ने उन्हें सम्मानित कर दोहरी ख़ुशी प्रदान की। कार्यक्रम का उद्घाटन बिहार विधान सभा के अध्यक्ष नन्द किशोर यादव ने किया। इस अवसर पर उन्होंने अपने उद्बोधन में कहा,- किसी की उपलब्धि से दूसरे ईर्ष्या करते हैं। यहां तक कि अपना भाई भी जलने लग सकता है। लेकिन शिक्षक और माता-पिता ही ऐसे होते हैं, जो अपने शिष्य और पुत्र-पुत्रियों की उन्नति पर प्रसन्न होते हैं। उन्होंने कहा कि भारत को अपनी स्वतंत्रता के 100 वर्ष पूरा करते करते विश्व का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र बनना है, तो उसमें आप सबका योगदान मतलब युवाओं का योगदान होना चाहिए।

समारोह के मुख्य अतिथि और राज्य उपभोक्ता संरक्षण आयोग, बिहार के अध्यक्ष न्यायमूर्ति संजय कुमार ने कहा कि इस संस्थान का

डॉ. हरिबल्लभ सिंह 'आरसी' की कविताएं

न्याय शासन का प्यासा

आज न्याय की नदी सुख रही
शासन हेतु प्यासा बन भूल की
सीमा उल्लंघन जो भी करेंगे आज
बंद रास्ते ही मिलेंगे उन्हें जान ।

संसद सर्वोपरि है जन समर्थन से बना
देश संचालनार्थ विधि निर्माता है
इसी के उल्लंघन की जांच न्यायालय करें
स्वयं न्याय विधि बनाने हेतु न चलें ।

घटना कुछ ऐसी घट रही आज जब
टकराव की सीमा का उल्लंघन हो रहा
किसी की सुनवाई वर्षों तक नहीं होती
किसी की रात में भी पट खोल कर होती ।

धन का धंधा चल पड़ा न्याय पथ पर
आरसी में चेहरा जड़ा देखें तो
स्वयं सभी हृदय ही बोल देगा
झूठ सत्य का पता तो चलता ही हैं।

जाँच की आँच

कश्मीर की घटना में चंद
देशद्रोही, अब्दुल्ला का इशारा
चंद और घराने पालते हैं
आतंकी को संबंधी बना लेते हैं।

चंद घराने जो लूटते थे
लूट की छूट बंद होने से
कुत्ता वंशी आतंकी को पालते
राजनीति की छाया में पलते ।

पेशेवर राजनेता भेष हिन्दू
लेकिन पाक वंशी सदा से हैं
पहचान को जानबूझ कर उजागर नहीं करते
खाते भारत का, राजनीति पाक हित का ।

जड़ मूल से उन्हें, समर्थकों के साथ
मिटाना होगा, शान्ति स्थापित हेतु ।

जमशेदपुर

योगदान इसलिए प्रशासनीय है कि इसने उन क्षेत्रों में प्रशिक्षण के कार्य आरंभ किए, जिनमें प्रशिक्षित विशेषज्ञों का घोर अभाव था।
पटना उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश और चिंतक न्यायमूर्ति राजेंद्र प्रसाद ने कहा कि एक वाक और श्रवण विशेषज्ञ समाज के लिए इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि वह गूंगों को शब्द देता है।

अपने अध्यक्षीय संबोधन में वरिष्ठ साहित्यकार और संस्थान के अध्यक्ष-सह-निदेशक-प्रमुख डा अनिल सुलभ ने कहा कि किसी भी पिता और आचार्य को सबसे अधिक प्रसन्नता तब होती है, जब कीर्ति और उपलब्धि में उसकी संतति अथवा शिष्य उसे पराजित करता है। हमारे विद्यार्थियों ने भारतवर्ष में ही नहीं विश्व के कोने-कोने में पहुंच कर अपनी सेवाओं और सफलताओं से हमारा मस्तक ऊंचा किया है। जिन स्वप्नों के साथ हमने इस संस्थान की स्थापना की, उन सपनों को हमारे विद्यार्थी पूरा कर हमें गौरव और आनंद प्रदान कर रहे हैं।

तख़्त श्रीहरि मंदिर साहिब गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी के पूर्व महासचिव सरदार महेंद्रपाल सिंह ढिल्लन, सामाजसेवी आनन्द मोहन झा, संस्थान के पूर्ववर्त्ती छात्र-छात्राओं; अमेरिका में कार्यरत सुविख्यात स्पीच पैथोलौजिस्ट डा विक्रान्त मल्लिक, डा कुमार अभिषेक, डा स्मिता कुमारी, डा अजय कुमार, डा रजनीश झा तथा डा निरुपमा राय ने भी अपने विचार व्यक्त किए। पूर्ववर्ती छात्रों ने अपनी उपलब्धियों के लिए संस्थान से प्राप्त गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और प्रशिक्षण को आधार बताते हुए, संस्थान की ऊन्नति में अपना अधिकतम योगदान देने का आश्वासन दिया।

इस अवसर पर विधान सभा के अध्यक्ष नन्द किशोर यादव ने वरिष्ठ शिक्षक डा अभय कुमार एवं पूर्ववर्त्ती छात्र-छात्राओं को अंग-वस्त्रम और स्मृति-चिन्ह देकर सम्मानित किया। संस्थान के पुराने चार कर्मियों कुमार करुणा निधि, मोहन मण्डल, राम विलास राम और सुरेंद्र कुमार को भी इस अवसर पर उनकी सेवाओं के लिए सम्मानित किया गया।

विद्यार्थियों के लिए एक वैज्ञानिक-सत्र भी आयोजित किया गया, जिसमें पूर्ववर्त्ती वरिष्ठ छात्र-छात्राओं ने वाक एवं श्रवण रोगियों के उपचार में हुए तकनीकी विकास की जानकारी दी और उपचार की नयी विधियों और व्यवहार में आ रहे नए उपकरणों से संबंधित सूचनाओं और अनुभवों को साझा किया।

मंच का संचालन डा महिमा झा ने तथा धन्यवाद-ज्ञापन संस्थान के प्रबंध-निदेशक डा आकाश कुमार ने किया। इस अवसर पर, डा नेहा कुमारी, प्रो संजीत कुमार, डा रूपाली भोवाल, डा संतोष कुमार सिंह, डा नवनीत कुमार, डा आदित्य ओझा, प्रो मधुमाला, प्रो देवराज, प्रो जया कुमारी, संस्थान के प्रशासी पदाधिकारी सूबेदार संजय कुमार, समेत बड़ी संख्या में अतिथिगण एवं विद्यार्थी उपस्थित थे। ●

संध्या में एक शानदार रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रम भी पेश किया गया।

ब्यूरो रिपोर्ट दूसरा मत

दिनेश गंगराड़े
वरिष्ठ व्यंग्यकार

चमत्कारी मंदिर

सांवलिया सेठ:मंडफिया

करीबन 26 साल पहले सांवलिया सेठ:मंडफिया चमत्कारी मंदिर जाने का सुअवसर नसीब हुआ, तब से इन छब्बीस वर्षों में मंदिर अति भव्यत्तम बन गया है। साल के अंत मे मैंने देखा कि लाखों दर्शनार्थियों का जमावड़ा लगा हुआ था। व्यवस्था में कमी देखी गई। प्रवेश द्वार की रेलिंग दो फीट चौड़ी रखी जानी चाहिए, पुरूष, महिलाओं की रेलिंग बनी है किंतु भीड़ अधिक होने पर व्यवस्था भंग होती है। सांवलिया सेठ की मूर्ति के सामने,गेट के सम्मुख बुजुर्गों को तख्त से दर्शन करने का जुगाड़ होना चाहिए। रस्सी की बजाय लोहे की अस्थाई रेलिंग लगनी चाहिए। समिति भोग का लड्डू चालीस रुपए में बेचती है। उसकी अच्छी पेकिंग की जाना चाहिए। सैकड़ो भक्तो के जूते-चप्पल खो गए। उज्जैन के महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग मन्दिर की तर्ज पर जूते चप्पल प्लास्टिक बैग में रखना चाहिए, ताकि सुलभता से वापिस हो सके। परिसर की स्वच्छता बढाना चाहिए। कुछ लोग इस चमत्कारी मंदिर को व्यापारियों का मंदिर कहते है। अब पढ़िए इसकी पौराणिक कथा:-

भगवान श्री सांवलिया सेठ का संबंध मीरा बाई से बताया जाता है। किवदंतियों के अनुसार सांवलिया सेठ मीरा बाई के वही गिरधर गोपाल हैं, जिनकी वह पूजा किया करती थी। मीरा बाई संत महात्माओं की जमात में इन मूर्तियों के साथ भ्रमणशील रहती थी। ऐसी ही एक दयाराम नामक संत की जमात थी जिनके पास ये मूर्तियां थी। एक बार जब औरंगजेब की मुगल सेना मंदिरों को तोड़ रही थी। मेवाड़ राज्य में पंहुचने पर मुगल सैनिकों को इन मूर्तियों के बारे में पता लगा। तब संत दयाराम जी ने प्रभु प्रेरणा से इन मूर्तियों को बागुंड-भादसौड़ा की छापर (खुला मैदान) में एक वट-वृक्ष के नीचे गड्ढा खोद कर पधरा दिया,गाड़ दिया और फिर समय बीतने के साथ संत दयाराम जी का देवलोकगमन हो गया। कालान्तर में सन 1840 में एक सौ चौरासी साल बाद,राजस्थान के मंडफिया ग्राम निवासी भोलाराम गुर्जर नाम के ग्वाले को एक सपना आया कि भादसोड़ा-बागूंड के छापर में चार मूर्तियां जमीन में दबी हुई है, जब उस जगह पर खुदाई की गई तो भोलाराम का सपना सही निकला और वहां से एक जैसी चार मूर्तियां प्रकट हुईं। सभी मूर्तियां बहुत ही मनोहारी थी। देखते ही देखते ये खबर सब तरफ आग की तरह फैल गई और आस-पास के लोग प्राकट्य स्थल पर पंहुचने लगे। फिर सर्वसम्मति से चार में से सबसे बड़ी मूर्ति को भादसोड़ा ग्राम ले जाई गई, भादसोड़ा में प्रसिद्ध गृहस्थ संत पुराजी भगत रहते थे। उनके निर्देशन में उदयपुर मेवाड़ राज-परिवार के भींडर ठिकाने की ओर से सांवलिया जी का मंदिर बनवाया गया। यह मंदिर सबसे पुराना मंदिर है इसलिए यह सांवलिया सेठ प्राचीन मंदिर के नाम से जाना जाता है। मंझली मूर्ति को वहीं खुदाई की जगह स्थापित किया गया इसे प्राकट्य स्थल मंदिर भी कहा जाता है। सबसे छोटी मूर्ति भोलाराम गुर्जर ने मंडफिया ग्राम लाई, जिसे उन्होंने अपने घर के परिण्डे में स्थापित करके पूजा आरंभ कर दी। चौथी मूर्ति निकालते समय खण्डित हो गई जिसे वापस उसी जगह पधरा दिया गया।

कालांतर में सभी जगह भव्य मंदिर बनते गए। तीनों मंदिरों की ख्याति भी दूर-दूर तक फैली। आज भी दूर-दूर से लाखों यात्री प्रति वर्ष श्री सांवलिया सेठ दर्शन करने आते हैं। सांवलिया सेठ के बारे में यह मान्यता है कि नानी बाई का मायरा करने के लिए स्वयं श्री कृष्ण ने वह रूप धारण किया था। व्यापार जगत में उनकी ख्याति इतनी है कि लोग अपने व्यापार को बढ़ाने

के लिए उन्हें अपना बिजनेस पार्टनर बनाते हैं।

क्यों कहा जाता है सांवलिया सेठ : सांवलिया सेठ के नाम का सबसे पहला जिक्र हमें सुदामा प्रसंग के समय मिलता है। सुदामा श्रीकृष्ण से मिलने द्वारिका जाते हैं। और वहां उनके महल में छप्पन पकवान जब उनके सामने परोसे जाते हैं तो वे यह कहकर श्रीकृष्ण से भोजन करने से इंकार कर देता है कि उनकी पत्नी वसुंधरा और मेरे बच्चें भूखे होंगे। यह सुनकर उसी वक्त श्रीकृष्ण दूसरा रूप धारण करके सुदामा के गांव पहुंच जाते हैं, वहां जाकर वे सांवले शाह बन जाते हैं। सुदामा के घर के बाहर तभी ढोल की आवाज सुनकर सुदामा की पत्नी वसुंधरा अपने बच्चों के साथ बाहर जाती है, तो देखती है कि एक बैलगाड़ी में खाने की ढेर सारी सामग्री है। और एक व्यक्ति ढोल बजाकर मुनादी कर रहा है कि सुनो...सुनो...सुनो। ठाकुर सांवले शाह सेठजी के यहां पोते ने जन्म लिया है। इस खुशी के अवसर पर एक महायज्ञ का अनुष्ठान किया गया है, जो दस दिनों तक होता रहेगा। और इन्हीं ठाकुर सांवले शाह ने 10-10 कोस तक ब्राह्मण परिवारों को तीनों समय का भोजन और मिष्ठान देने की घोषणा की है। यह मुनादी चक्रधर भी सुन रहा होता है। यह सुनकर वसुंधरा प्रसन्न हो जाती है। और श्रीकृष्ण मुस्कुराते हैं। मुनादी वाला आगे कहता है कि जो किसी कारण से नहीं आ सकते हम उनके घरों में जाकर भोजन वितरण कर देंगे। यह सुनकर चक्रधर अपने हाथ की टोकरी को पालकी में रख देता है और कहता है- हे ईश्वर तू कितना दयालु, तूने आखिर भूखे भक्तों के भोजन का प्रबंध कर ही दिया। ऐसा कहकर वह द्वार पर खड़ी वसुंधरा के बच्चों को देखता है और उनके पास जाकर हाथ जोड़कर कहता है- आओ बच्चों आओ, देखो बेटा भोजन बंट रहा है, आओ ना। यह सुनकर सभी बच्चे वसुंधरा की ओर देखते हैं तो वह उन्हें इशारों से घर में से बर्तन लाने का कहती है। एक बच्चा एक भगोना ले जाता है। फिर चक्रधर उन्हें बैलगाड़ी के पास ले जाता है तो वसुंधरा द्वार पर ही खड़ी यह दृश्य देखती रहती है। चक्रधर उनको बैलगाड़ी पर खड़े एक व्यक्ति से भोजन दिलवाता है। भोजन वितरण करने वाला पूछता है- ब्राह्मण पुत्र हो ना? यह सुनकर एक बालक कहता है- हां। तब वह कहता है कि इतनी थोड़ीसी खीर से क्या होगा, कोई बड़े भांडे-बर्तन ले आते। घर में कोई बड़ा नहीं हैं? तब वह कहता है कि मेरी मां है।...और पिताजी? तब चक्रधर कहता है कि वृंदापुरी के सारे ब्राह्मण आज गांव में मौजूद हैं। केवल इनके पिता को छोड़कर। कर्मों का मारा सुदामा रोज घर-घर जाकर भिक्षा मांगता था। और आज जब भोजन उसके द्वार आया है, तो वही नहीं हैं। तब वह व्यक्ति पूछता है- क्यूं कहां गया है? तब चक्रधर कहता है कि द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण से मिलने द्वारिका नगरी गया है। यह सुनकर वह भोजन वितरण करने वाला

कहता है कि तो फिर हम ही भोजन दे आते हैं भीतर। फिर वह दूसरे सेवकों से कहता है चलो भाई दो टोकरी तैयार करो। फिर द्वार पर खड़ी वसुंधरा के समक्ष भोजन वितरण करने वाला दो टोकरी भोजन लेकर आता है। और प्राणाम करके कहता है कि ये लीजिए भोजन। तीनों समय का भोजन घर पर ही दे जाएंगे हम। 10 दिनों तक घर में चूल्हा जलाने की कोई आवश्यकता नहीं। ले लीजिए। यह सुनकर चक्रधर कहता है- संकोच मत कीजिए भाभीजी। ईश्वर की दया समझकर बटोर लीजिए। आप ही ने तो कहा था कि जब त्रिलोकीनाथ कृपा करें तो कौन मूरख इंकार करेगा। यह सुनकर वसुंधरा प्रसन्न हो जाती है। फिर चक्रधर कहता है- ये त्रिलोकीनाथ ही की कृपा है भाभीजी लीजिए। फिर चक्रधर भोजन का पात्र खुद ही सेवक से लेकर उन्हें दे देता है।...भोजन लेकर वसुंधरा कहती हैं- सत्य है श्रीकृष्ण भक्त वत्सल हैं। चक्रधर की कहता है- जय श्रीकृष्ण। सभी कहने लगते हैं जय श्रीकृष्ण।

उधर, भूखा सुदामा एक वृक्ष के नीचे बैठा कृष्ण नाम जपता रहता है। श्रीकृष्ण उसे और भोजन को देखते हैं और फिर अपनी माया से एक ब्राह्मण ग्रमीण को प्रकट करते हैं। वह ब्राह्मण सुदामा के पास आकर कहता है- प्रणाम। सुदामा की तंद्रा भंग होती है, तब वह भी प्रणाम करता है। फिर वह ब्राह्मण कहता है- वेशभूषा से तो ब्राह्मण लगते हो। यह सुनकर सुदामा कहता है- हां ब्राह्मण ही हूं। तब वह कहता है- ब्राह्मण हो तो यहां खंडहर में अकेले बैठे क्या कर रहे हो? जाओ वहां पास वाले गांव में जहां सभी ब्राह्मणों को खीर-पुरी बंट रही है। यह सुनकर सुदामा उसके हाथ की ओर देखता है जिसमें पत्तल में खीर और पुरी होती है। यह देखकर वह कहता है खीर-पुरी! कौन बांट रहा है? यह सुनकर वह ब्राह्मण कहता है- ठाकुर सांवले शाह की ओर से बंट रही है।... यह सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कुराते हैं। तब सुदामा कहता है- सांवले शाह? इस पर ब्राह्म कहता है- हां सांवले शाह के यहां पोता हुआ है और इस खुशी में 10 दिन तक महायज्ञ की घोषणा की है। और साथ यह भी घोषणा की है कि जब तक यज्ञ चलेगा तब तक अर्थात पूरे 10 दिनों तक 10-10 कोस के अंतर्गत सभी ब्राह्मण परिवारों को प्रतिदिन तीन समय तक खीर-पुरी का भोजन मिलता रहेगा। यह सुनकर सुदामा प्रसन्न हो जाता है। फिर वह ब्राह्मण कहता है- वाह क्या महादानी है सांवले शाह। आज दो दिन से 10 कोस तक किसी ब्राह्मण के यहां चूल्हा नहीं जला होगा। रथों में भर-भर कर खीर और पुरी हर ब्राह्मण परिवार के यहां पहुंचाई जा रही है। यह सुनकर सुदामा पूछता है- 10-10 कोस तक हर गांव में? तब वह ब्राह्मण कहता है- हां हर गांव में। ब्राह्मणवाड़ी, समतानगर, मैनपुरी, जनकपुरी सभी गांव में। यह सुनकर सुदामा पूछता है कि वृंदापुरी में भी खीर-पुरी बंट रही है? इस पर वह ब्राह्मण कहता हैं- हां वृंदापुरी में भी। अरे भाई मैं कल स्वयं उपस्थित था वहां वृंदापुरी में।... यह सुनकर सुदामा प्रसन्न हो जाता है। फिर आगे वह ब्राह्मण कहता है कि मेरे सामने हर ब्राह्मण परिवार को बुला-बुला कर खीर-पुरी दी गई। वहां का हर एक ब्राह्मण झोली भर-भर के ले गया। परंतु केवल एक ब्राह्मण उपस्थित नहीं था वहां गांव में। यह सुनकर सुदामा पूछता है- कौन नहीं था? तब वह कहता है कि लोग कह रहे थे कि सुदामा नाम का ब्राह्मण उपस्थित नहीं था गांव में।...यह सुनकर सुदामा कहता है- सुदामा? तब वह ब्राह्मण कहता है- हां सुदामा, क्या आप जानते हैं उन्हें? तब सुदामा कहता है- मैं ही तो हूं वह अभागा ब्राह्मण। तब वह ब्राह्मण कहता है कि सभी को खेद था कि ऐसे समय नहीं है सुदामा। तब सुदामा कहता है कि अरे मेरी चिंता छोड़ो। ये बताओ की मेरे बच्चों-पत्नी को भोजन मिला की नहीं? यह सुनकर वह ब्राह्मण कहता है क्या बात कर

रहे हो वीप्रवर। आपके परिवार की आत्मा तृप्त हो गई होगी खीर-पुरी खाकर।...यह सुनकर सुदामा अति प्रसन्न हो जाता है। फिर वह ब्राह्मण कहता है- मेरे सामने सांवले शाह के सेवकों ने आपके पत्नी और बच्चों को खीर के दोने भर-भर के दिए। यह सुनकर सुदामा श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण जपने लगता है तो आगे वह ब्राह्मण कहता है कि आपके चार बच्चे हैं ना? तब सुदामा कहता है- हां हां।... यह सुनकर वह ब्राह्मण कहता है- सभी की आत्मा तृप्त हो गई और 10 दिन तक ऐसा ही चलने वाला है।

यह सुनकर सुदामा प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण नाम जपने लगता है। और कहता है- हे कृष्ण-कन्हैया। हे मेरे पालनहार! तेरी लीला बड़ी न्यारी है।...अरे भाई तुमने ये बताकर मेरी सारी चिंता दूर कर दी। मैं तो इसी विचार से स्वयं भोजन नहीं कर रहा था कि मेरे बच्चे भूखे हैं, मैं कैसे खालूं। तब वह ब्राह्मण कहता है- अब ये चिंता छोड़ो वीप्रवर वो परम आनंद में हैं। अब अपनी भी भूख मिटा लो, चलो पास वाले गांव में मैं आपको ले चलता हूं और खीर-पुरी दिलवाता हूं चलो। यह सुनकर सुदाम कहता है- हां हां चलो। सुदामा जाने लगता है तभी ग्रामीण वेश में मुरली मनोहर बनकर श्रीकृष्ण जो उनके साथ ही यात्रा करते आए थे वे कहते हैं- अरे अरे! ये क्या? यह सुनकर सुदामा रुक जाता है। फिर श्रीकृष्ण कहते हैं- बड़े स्वार्थी हो जी। हमने आपके कारण अपनी पत्नी लक्ष्मी-देवी के हाथ का बना भोजन तक नहीं खाया और आप किसी सांवले शाह की खीर-पुरी खाने चल दिए। और हमें पूछा तक नहीं।...यह सुनकर सुदामा अपने मुंह पर हाथ रखकर कहता है- अरे हां। तब श्रीकृष्ण कहते हैं- वाह, शपथ भगवान श्रीकृष्ण की कि अपने जीवन में ऐसा स्वार्थी ब्राह्मण मैंने पहली बार देखा है। यह सुनकर सुदामा कहता है- क्षमा करना भैया भूल हो गई। मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गई। फिर सुदामा उस ब्राह्मण से कहता है- भैया मेरे नाम का भोजन तो यहीं रखा है। आपका बहुत-बहुत धन्यवाद आप चलिए मैं यहीं खा लूंगा। यह सुनकर वह ब्राह्मण कहता है- अच्छा मैं चलता हूं। फिर सुदामा श्रीकृष्ण से कहता है- क्षमा करना भाई मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गई। यह सुनकर श्रीकृष्ण कहते हैं- आप क्या समझे मैं आपके बगैर ही भोजन कर लेता, चलिए साथ भोजन करेंगे। फिर श्रीकृष्ण अपने हाथों से सुदामा को भोजन परोसकर खिलाते हैं। और कहते हैं- ब्राह्मण देवताजी मैंने आपसे पहले ही कहा था कि भोजन के दाने-दाने पर आप ही का नाम लिखा है। परंतु आप मानते ही नहीं थे। तब सुदामा कहता है मन नहीं मान रहा था भैया। इस पर श्रीकृष्ण कहते हैं कि अब तो मन मान गया ना। अब निश्चि त होकर जी भरकर खाइए।... जिन्हें भोग अर्पण करें नित सारा संसार, उन्हीं के हाथों खा रहा भाग्यवान सत्कार। पुण्यवान सतकाम। सुदामा बड़े चाव से भोजन करता है अंगुलियां चाट-चाट कर। यह देखकर रुक्मिणी प्रसन्न हो जाती है। फिर सुदामा इशारे से कहता बस बहुत हुआ तब श्रीकृष्ण कहते हैं- नहीं नहीं ब्राह्मण देवता ये लक्ष्मीदेवी के हाथ के बनाए हुए मोतीचूर के लड्डू..ये तो खाना ही पड़ेगा। सुदाम सकुचाते हुए उसे भी लेकर खा लेता है। तब श्रीकृष्ण दूसरा लड्डू देते हैं, तो वह कहता है बस बहुत खा लिया अब ओर नहीं खाया जाएगा। मानो आत्मा तृप्त हो गई। बहुत दिनों बाद खाने का इतना आनंद आया। यह सुनकर श्रीकृष्ण कहते हैं- चलिए आप हाथ धोइए मैं बिछोना लगाता हूं। यह दृश्य देखकर रुक्मिणी श्रीकृष्ण से कहती हैं- वाह प्रभु वाह धन्य हैं आप और आपकी लीला। क्या-क्या रूप धारण करना पड़ रहे हैं आपको। कभी सांवले शाह तो कभी, कभी मुरली मनोहर। एक मित्र के खातिर आपको भी क्या-क्या जतन करने पड़ रहे हैं। जय श्रीकृष्ण। ●

विकलांग होते देश के पुस्तकालय

विजय गर्ग
वरिष्ठ स्तंभकार

सदियों से, दुनिया भर में हमारे पुस्तकालय शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा देने के साथ-साथ हमारी संस्कृति और इतिहास को भी संरक्षित कर रहे हैं। पुस्तकों, शोध पत्रों और पत्रिकाओं के पुस्तकालय संसाधन बिना किसी भय या पक्षपात के सभी को समान जानकारी प्रदान करते हैं। पुराने समय के कई साहित्यिक दिग्गजों, वैज्ञानिकों और विद्वानों को पुस्तकालयों में नियमित रूप से जाने की आदत से लाभ मिला है, जहां उन्हें पुस्तकों के प्राचीन खजाने के साथ-साथ हर विषय पर समकालीन पुस्तकों का भंडार भी मिलता है।

जिन लोगों के पास पुस्तकें खरीदने के लिए वित्तीय साधन नहीं होते, वे नई पुस्तकें पढ़ने के लिए हमेशा सार्वजनिक पुस्तकालयों पर निर्भर रहते हैं। इस सूचना प्रौद्योगिकी युग में, पुस्तकालयों ने पुस्तकों और अन्य संसाधनों को डिजिटल डेटाबेस में परिवर्तित करना शुरू कर दिया है। कई विकसित देशों में पुस्तकालय भी सर्वोत्तम सामुदायिक केन्द्रों में से एक साबित हुए हैं, जहां लोग सामुदायिक आयोजनों, कार्यशालाओं और कार्यक्रमों के लिए एक साथ आते हैं। बेहतर नागरिक भागीदारी और सामाजिक सहयोग को बढ़ावा देने के लिए पुस्तकालय ऐसी बैठकों में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके बावजूद, विकासशील देशों ने सामाजिक विकास को बढ़ाने के लिए पुस्तकालय संस्थाओं का अभी तक पर्याप्त लाभ नहीं उठाया है।

हमारे पास सार्वजनिक पुस्तकालयों की संख्या भले ही बड़ी हो, लेकिन दुख की बात है कि भारत में हम पुस्तकालय संचालन के मामले में अंतर्राष्ट्रीय मानकों से कई गुना पीछे हैं। वे पाठक-अनुकूल नहीं हैं। पुस्तकालयों के प्रति सरकारों और विश्वविद्यालयों की उदासीनता ने हमारे देश में अध्ययन और बौद्धिक अनुसंधान के लिए पुस्तकालय संसाधनों की उपयोगिता को बेहद कम कर दिया है। पुस्तकों के माध्यम से इन ढहती हुई शिक्षण संस्थाओं को बचाने के लिए कोई गंभीर प्रयास नहीं किए गए हैं।

केवल हमारे छात्र ही नहीं, बल्कि शिक्षक भी हर क्षेत्र में इंटरनेट पर उपलब्ध अप्रमाणिक और अवैध सूचनाओं के हमले का शिकार हो रहे हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने पुस्तकालय में पुस्तकों से सीखने की हमारी जिज्ञासा को बुरी तरह प्रभावित किया है। हमारे पुस्तकालयों में हमें एक ही स्थान और समय पर एक ही विषय पर अनेक पुस्तकें, पत्रिकाएं, शोध पत्र, संदर्भ पुस्तकें मिल जाती हैं। सामान्य पाठक और शोधकर्ता इंटरनेट पर वास्तविक जानकारी से अनभिज्ञ रहते हैं, जबकि पुस्तकालय में उन्हें अध्ययन के विषय पर विविध जानकारी मिल सकती है।

हमारे शिक्षक और छात्र दोनों ने अपनी मौलिक सोच खो दी है, जो एक परिपक्व समाज के लिए हमारे युवा मस्तिष्क के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। टी.वी. और बेलगाम पक्षपातपूर्ण सोशल मीडिया ने हमारी वह शांति छीन ली है जो हमें पहले अखबार या लाइब्रेरी में किताब पढ़कर मिलती थी। यहां, भले ही हम भारत को पुनः महान बनाने की बात करते हैं, लेकिन हम शायद ही कभी महसूस करते हैं कि भारत में पुस्तकालय और पुस्तक पढ़ने की संस्कृति तेजी से खत्म हो रही है। हमें अपनी पुस्तकालय प्रणाली को सुचारू बनाने तथा एक बार फिर से पढ़ने की संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए तत्काल हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

यहां तक कि स्कूलों और कॉलेजों में किताबों की अलमारियां भी बंद रहती हैं। चाहे विश्वविद्यालय परिसर हों, कॉलेज और स्कूल हों या

नगरपालिका या पंचायत पुस्तकालय हों, सभी में मूल्यवान पुस्तकें हैं। पुस्तकालयों को केंद्रीय एवं राज्य वित्त पोषण प्राप्त होता है। दुर्भाग्यवश, पुस्तकालय संसाधनों का उपयोग बहुत कम है। किताबें हमेशा उन आत्माओं से बातचीत करने के लिए तरसती हैं जो उन्हें पढ़ते हैं। आइये उन्हें जगाएं। कुछ सुझाए गए हस्तक्षेप जो हमारे पुस्तकालयों और पठन संस्कृति को सुरक्षित रखने में मदद कर सकते हैं, उनमें शामिल हैंः

पहला कारण यह है कि कई पुस्तकालयों में नियमित रूप से प्रशिक्षित पुस्तकालयाध्यक्ष नहीं होते। स्कूलों और कॉलेजों में पुस्तकालय कर्मचारियों की संख्या भी बहुत कम है। उनका वेतन बहुत कम है। और शायद ही कोई ऐसा पुस्तकालयाध्यक्ष हो, जो हमारे युवाओं में पढ़ने को प्रोत्साहित करने के लिए कोई सकारात्मक हस्तक्षेप करता हो। सभी कॉलेजों में पुस्तकालय विज्ञान को एक विषय के रूप में भी शामिल किया जाना चाहिए ताकि हम पुस्तकालयों के लिए प्रशिक्षित कार्यबल का आधार तैयार कर सकें।

दूसरा, पुस्तकालयों के खुलने और बंद होने का समय अब तक कार्यालय खोलने के लिए नौकरशाही दिशानिर्देशों के अनुरूप रहा है। नगर निगम के पुस्तकालय सुबह 9 बजे खुलते हैं और शाम 4 से 5 बजे के बीच बंद हो जाते हैं। पुस्तकालय सप्ताहांत पर बंद रहते हैं, जिनमें शनिवार, रविवार और अन्य अवकाश शामिल हैं। सप्ताहांत और छुट्टियों के दिनों में वाचनालय में समाचार पत्र की सुविधा भी उपलब्ध नहीं कराई जाती है। आमतौर पर हमारे स्कूल और कॉलेज के पुस्तकालय भी इसी पैटर्न का पालन करते हैं। विश्वविद्यालय परिसरों में कुछ पुस्तकालयों के खुले रहने के दुर्लभ अपवाद हो सकते हैं, लेकिन यह दृष्टिकोण अपर्याप्त है। सार्वजनिक पुस्तकालय पाठकों को पूरी तरह निराश कर रहे हैं। पुस्तकालयों को सप्ताह में अधिक दिन और अधिक घंटों तक खुला रहना चाहिए।

तीसरा, अब सार्वजनिक एवं नगरीय पुस्तकालयों तथा विश्वविद्यालयों के सीमित विस्तार पुस्तकालयों में पुस्तक सुरक्षा शुल्क के संग्रह में काफी वृद्धि हुई है। इसके साथ ही सदस्यों से वार्षिक शुल्क के रूप में भारी खर्च भी वसूला जाता है, जिस पर 18% जीएसटी भी लगाया जा रहा है। अब ऐसा लगता है कि सरकारें भी किताबें पढ़कर पैसा कमाना चाहती हैं। हमारे पुस्तकालय इंटरनेट उपयोग के लिए भी शुल्क लेते हैं।

चौथा, अधिकांश सार्वजनिक पुस्तकालयों में बैठने की जगह अपर्याप्त है। पढ़ने के लिए उचित मेज और कुर्सियां, पर्याप्त प्रकाश व्यवस्था, शौचालय, इंटरनेट संसाधन जैसी बुनियादी सुविधाएं बहुत खराब हैं। दुर्लभ पुस्तकों और धर्मग्रंथों में संदर्भ और ज्ञान के इन खजानों को पहुंच से दूर रखा गया है। पुरानी पुस्तकों को कभी भी छांटा या जनता को नहीं बेचा जाता।

पांचवां, पुस्तक सूचीकरण को डिजिटल बनाने के लिए कोई प्रयास नहीं किए गए। डिजिटल कैटलॉग उपयोगकताओं को शीर्षक, लेखक, विषय या प्रमुख शब्दों के आधार पर पुस्तकों की खोज करने में सहायता करते हैं, जिससे रुचिकर पुस्तकें ढूंढना आसान हो जाता है। डिजिटल कैटलॉग किसी भी समय और कहीं भी उपलब्ध हैं। कई भारतीय सार्वजनिक और विश्वविद्यालय पुस्तकालयों ने दुर्लभ पांडुलिपियों और पुस्तकों को हमेशा के लिए संरक्षित करने के लिए उनके डिजिटलीकरण पर अभी तक कोई जोर नहीं दिया है। पश्चिमी विकसित देशों में पाठक कुछ ही क्लिक से पुस्तकों को ब्राउज, खोज और यहां तक कि आरक्षित भी कर सकते हैं।

छठा, विकलांग पुस्तकालय उपयोगकर्ता पूरी तरह से उपेक्षित समूह हैं। हमारे पुस्तकालयों में उनके लिए कोई विशेष स्थान या पढ़ने की सुविधा नहीं है। अधिकांश भारतीय पुस्तकालयों में ब्रेल लिपि की पुस्तकें भी नहीं हैं।

सातवें, भारत ने अभी तक बच्चों के लिए विशेष पुस्तकालय खोलने या मौजूदा सार्वजनिक पुस्तकालयों में ऐसा स्थान आरक्षित करने के बारे में नहीं सोचा है। वरिष्ठ नागरिकों और शांति क्षेत्रों के लिए कोई अलग स्थान नहीं है। ऐसी अज्ञानता निराशाजनक है। सार्वजनिक पुस्तकालयों में पुस्तकालय समितियां होनी चाहिए। सार्वजनिक पुस्तकालयों के लिए अलग से वित्तीय बजट आवंटित किया जाना चाहिए।

आइए, हम भारत के पुस्तकालयों में कार्यरत अपने विद्वान मित्रों से कुछ सबक सीखें। हमारे नोबेल पुरस्कार विजेता रवींद्रनाथ टैगोर ने अपने नोबेल पुरस्कार की राशि का एक बड़ा हिस्सा कलकत्ता के ग्रामीण इलाकों में पुस्तकालय स्थापित करने के लिए दान कर दिया था। और 1925 में अखिल बंगाल पुस्तकालय संघ के पहले अध्यक्ष भी चुने गए थे। पुस्तकालय आंदोलन के अग्रदूतों में से एक थे डॉ. एस.आर. यह रंगनाथन ही थे जिनकी पुस्तकालय विज्ञान की अवधारणाओं को टैगोर ने गांव के पुस्तकालयों में व्यावहारिक रूप दिया। दोनों ने भारत में पुस्तकालय आंदोलन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रंगनाथन, जिन्हें अक्सर 'भारत में पुस्तकालय विज्ञान का जनक' कहा जाता है, अपने पुस्तकालय विज्ञान के पांच सिद्धांतों के लिए जाने जाते हैं, जो पुस्तकालय प्रथाओं के लिए एक दार्शनिक आधार प्रदान करते हैं।

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और युद्ध संबंधी समस्याओं से भरी दुनिया में पुस्तकालय और पुस्तकें रक्षक साबित हो सकती हैं। मानवीय चिंताओं के समाधान हमारी पुस्तकों में हैं, क्योंकि उनमें सदियों का ज्ञान समाया हुआ है। हालाँकि, वे हमारी अलमारियों में बंद हैं। हमारे पुस्तकालयों की स्थिति में गिरावट रुकनी चाहिए। आइए, हम अपने पुस्तकालयों में सोई हुई पुस्तकों को जगाकर अपने समाज को निरंतर पतन से बचाएं। ●

(लेखक सेवानिवृत्त प्रिंसिपल एवं शैक्षिक स्तंभकार हैं)

सौंदर्य का छलावा या ....

उमेश कुमार साहू

कभी सोचा है, जब आप आईने के सामने खड़ी होती हैं, तो आपको अपनी सूरत से ज्यादा समाज की सोच का अक्स क्यों दिखाई देता है?'गोरी त्वचा ही सुंदरता की निशानी है', इस झूठ को हम इतनी बार सुन चुके हैं कि इसे सच मान बैठे हैं। बाजार और समाज ने हमारी आत्मछवि को इस कदर जकड़ लिया है कि हम बिना सोचे-समझे अपनी ही त्वचा से युद्ध करने को तैयार हो जाते हैं।

परिणाम? रासायनिक क्रीमों का अंधाधुंध इस्तेमाल, दर्दनाक ट्रीटमेंट्स, झूठे वादों पर भरोसा और अंत में टूटता आत्मविश्वास, बिगड़ती त्वचा और खोती हुई असली पहचान। क्या वाकई यह गोरेपन की लालसा हमें खूबसूरत बना रही है या हमें अंदर से खोखला कर रही है?

गोरा रंगः एक बाजारू छलावा

फेयरनेस क्रीम्स और स्किन लाइटनिंग ट्रीटमेंट्स का एक अरब डॉलर का उद्योग आखिर किसके बल पर फल-फूल रहा है? हमारी असुरक्षा, हमारे भीतर बैठी हीन भावना, और हमारी जड़ों में बैठा 'रंगभेद' ही इस बाजार की नींव हैं। टीवी विज्ञापन दिखाते हैं, गोरी लड़की को नौकरी मिल गई, शादी के रिश्ते आ गए, आत्मविश्वास बढ़ गया! क्या सफलता और आत्मसम्मान का मापदंड सच में सिर्फ एक रंग तक सीमित रह गया है?

अब वक्त है इस झूठ से पर्दा हटाने का।

'खूबसूरती' के नाम पर जहर

बाजार में मिलने वाले अधिकतर फेयरनेस प्रोडक्ट्स में पारा, हाइड्रोक्विनोन, स्टेरॉयड और दूसरे हानिकारक रसायन होते हैं। इनका असर आपकी त्वचा ही नहीं, पूरे शरीर पर पड़ता है।

1. त्वचा का स्थायी नुकसान

ये केमिकल्स शुरूआत में असर दिखाते हैं, लेकिन धीरे-धीरे त्वचा पतली, संवेदनशील और रूखी हो जाती है।

असमान रंगत : चेहरे पर सफेद और काले धब्बे बनने लगते हैं।

मुंहासे और जलन : बार-बार पिंपल्स होना, स्किन का लाल पड़ना और खुजली होना आम समस्या बन जाती है।

2. हार्मोनल असंतुलन और कैंसर का खतरा

कई फेयरनेस क्रीम्स में मौजूद स्टेरॉयड शरीर के हार्मोनल संतुलन को बिगाड़ सकते हैं, जिससे मोटापा, अनियमित पीरियड्स और चेहरे पर अनचाहे बाल आने जैसी समस्याएं हो सकती हैं।

लंबे समय तक इस्तेमाल से त्वचा कैंसर तक होने की संभावना बढ़ जाती है।

3. मानसिक असरः टूटता आत्मविश्वास

जब गोरी त्वचा ही खूबसूरती की पहचान बना दी जाती है, तो हर सांवली लड़की खुद को कमतर समझने लगती है।

आत्मविश्वास केवल रंग से जुड़ जाता है, और असली क्षमता पीछे छूट जाती है।

सौंदर्य नहीं, आत्मसम्मान बदलो

अब समय आ गया है कि हम अपनी सोच बदलें। सुंदरता किसी रंग से नहीं, बल्कि आत्मविश्वास, स्वस्थ जीवनशैली और व्यक्तित्व से बनती है। क्या आपको कभी सोचना चाहिए कि–

√ एक दमकती, स्वस्थ त्वचा बेहतर है या केमिकल्स से जली हुई गोरी

त्वचा?

√ आत्मविश्वास और प्रतिभा से भरी जिंदगी बेहतर है या आईने में हर दिन अपना रंग देखकर खुद को कोसना?

√ खुद को स्वीकार करना ज्यादा खूबसूरत है या समाज के झूठे पैमानों में ढलने की कोशिश करना?

स्वस्थ त्वचा, स्वस्थ सोच

रासायनिक उत्पादों से बचें : दूध, हल्दी, बेसन, गुलाबजल जैसे प्राकृतिक उपाय अपनाएं।

नियमित व्यायाम करें : योग और प्राणायाम से रक्त संचार सुधरता है और त्वचा स्वाभाविक रूप से दमकती है।

पौष्टिक भोजन लें : विटामिन-युक्त आहार आपकी त्वचा को भीतर से चमकदार बनाता है।

रंग से नहीं, कर्म से पहचाने जाएं : खुद को किसी रंग तक सीमित मत करें। आत्मविश्वास आपकी सबसे बड़ी खूबसूरती है।

अब आंखें खोलने का समय आ गया है

क्या आप वाकई एक ऐसी दौड़ में भाग लेना चाहेंगी जो आपको नुकसान के सिवा कुछ नहीं दे रही? क्या आप उन कंपनियों की गुलाम बनना चाहेंगी जो आपकी असुरक्षा का फायदा उठाकर करोड़ों कमा रही हैं?

अब जरूरत है अपनी असली पहचान को अपनाने की। अपनी त्वचा के रंग को नहीं, अपनी आत्मशक्ति को गोरा बनाइए क्योंकि सच्ची सुंदरता किसी रंग की मोहताज नहीं होती। वह आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और खुद से किए गए प्रेम में बसती है। ●

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

दूसरा मत

पढ़ें और पढ़ाएं

एक शुभचिंतक
नई दिल्ली

जल्दी खट्टा नहीं होगा दही

रितु साहू

गर्मी का जहां एक ओर तीखी धूप और तपन की वजह से परेशान करता है तो वहीं दूसरी ओर इस मौसम में खाने-पीने की चीजें भी जल्दी खराब होने लगती है। तापमान में बढ़ोतरी होने से नमी वाली जगहों पर बैक्टीरिया तेजी से पनपते लगते हैं। खासतौर पर डेयरी जैसे कि दूध-दही बहुत जल्दी खराब होते हैं। इनमें खट्टापन बढ़ जाता है।

अब ज्यादा खट्टा दही तो कोई भी खाना चाहेगा। ऐसे में दही को ठीक से स्टोर करने से साथ ही दही को जमाते वक्त पर ध्यान देने की जरूरत होती है। हालांकि आप सफेद पाउडर का इस्तेमाल करके दही को जल्दी खराब या खट्टा होने से बचा सकते हैं। इसके लिए हम आपको यह आसान तरीका बता रहे हैं।

यहां हम जिस सफेद पाउडर की बात कर रहे हैं असल में यह नमक है। अगर आप दही में चुटकी भर नमक डाल देते हैं तो इससे स्वाद बढ़ता है। इसके अलावा नमक एक प्रिजरवेटिव की तरह काम करता है। जिसकी वजह से बैक्टीरिया का ग्रोथ रुकती है। हालांकि ध्यान रहे कि नमक का ज्यादा इस्तेमाल भी ना करें।

दरअसल दही को लंबे समय तक बाहर छोड़ने से गर्मी में बैक्टीरिया बढ़ने लगते हैं जिस-। की वजह दही जल्दी खराब हो जाता है। इसलिए जब भी गाढ़ा और मलाईदार दही जमाएं तो इसे तुरंत ही फ्रिज में स्टोर करने के लिए रख देना चाहिए। वहीं, दही को जमान के लिए ग्लास, सिरैमिक कंटेनर सबसे बेस्ट होते हैं।

खट्टेपन के पीछे दही को गलत समय पर जमाना भी एक वजह मानी जाती है। अगर आप सुबह-सुबह दही जमाने का सोच रहे हैं तो इस वक्ते दही गाढ़ा नहीं होगा और पानी छोड़ देगा। इसलिए बेहतर होगा कि रात के वक्तआ दही

जमाएं। सुबह जब जम जाए तो इसे कुछ घंटे फ्रिज में स्टोर करने के लिए रख दें। इससे स्वाद में खटास नहीं आएगी और टेस्टी लगेगा।

बाहर से खरीद रहे हैं पैकेट पर एक्सपायरी डेट देखें, क्योंकि दही की शेल्फ लाइफ सीमित होती है।

दही लंच के लिए ऑफिस ले जाते हैं इंसुलेटेड कंटेनर में पैक करें, इससे दही फ्रेश और ठंडा रहेगा।

दही को साफ और सूखे बर्तन में रखना चाहिए, इससे जल्दी खराब नहीं होता है।

अगर आपके पास आइस बैग है तो दही के बॉक्स को इसके अंदर भी रख सकते हैं तापमान का बैलेंस बना रहेगा।

संध्या कुमारी

बाइक का सेल्फ-स्टार्ट बटन अगर टूट जाए

भारत में जुगाड़ू लोगों की कमी नहीं है। यहां पैसे बचाने के लिए आपको एक से बढ़कर एक जुगाड़ू लोग देखने को मिलेंगे। इनके जुगाड़ के आगे तो मंहगी टेक्नोलॉजी भी घुटने टेक लेती हैं।

हाल ही में इंटरनेट पर एक और जुगाड़ू वीडियो वायरल हो रहा है, जिसमें एक शख्स गाड़ी को सेल्फ स्टॉर्ट करने के लिए एक ऐसा देसी हैक आजमाता है, जिसे देखकर आपके मुंह से भी निकलेगा 'टेक्नोलॉजिया।'

वीडियो में दिखाई देता है कि एक शख्स की बाइक का सेल्फ स्टॉर्ट बटन टूटा होता है। जिसे लगवाना उसे महंगा पड़ सकता था। ऐसे में उसने गाड़ी को सेल्फ स्टॉर्ट करने के लिए एक पतली लकड़ी का इस्तेमाल किया है।

वो उस तीली जैसी लकड़ी को बाइक के हैंडल में लटका कर रखता है और बाइक स्टार्ट करने के लिए लकड़ी को होल में घुसाकर सेल्फ बटन दबाता है। जिससे गाड़ी स्टॉर्ट हो जाती है।

अब जब भी उसे बाइक सटार्ट करनी होती है, वो बस हैंडल में टंगी पतली लकड़ी को होल में घुसाकर छोड़ देता है। इस हैक से शख्स अपने पैसे बचा लेता है।

वायरल रील को इंस्टाग्राम अकाउंट से शेयर किया गया है, जिस पर अब तक 11 मिलियन से ज्यादा व्यूज आ चुके हैं। साथ ही वीडियो ने 2 लाख से ज्यादा लाइक्स भी बटोर लिए हैं।

कठिन साधना के साधक थे नंद बाबू : विष्णु नागर

उदयपुर में चतुर्वेदी स्मृति व्याख्यान

उदयपुर में 'हमारे समय मे लेखन' विषय पर नंद चतुर्वेदी स्मृति व्याख्यान कवि-कथाकार विष्णु नागर ने दिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ दिव्यप्रभा नागर ने की कार्यक्रम मे नंद चतुर्वेदी की कविताओं के बांग्ला अनुवाद 'शिशिरेइ सेइ दिन' का विमोचन भी हुआ।

स्मृति व्याख्यान में विष्णु नागर ने कहा कि नंद बाबू ऐसे कवि थे, जो केवल कविता के लिए कविता नहीं करते समाज के लिए करते थे, समता-न्याय उनकी कविता के केंद्र मे था, जो सवाल उनके राजनितिक चिंतन के केंद्र में थे। जिस उम्र मे व्यक्ति अध्यात्म की शरण में जाते है, उसमें भी नंद बाबू इस दुनिया में रहे, दुनिया की समस्या में रहे, उनमें डूबे और लिखा, नंद बाबू राजनीतिक सोच और कविता को जोड़कर लिखते हैं, जो एक बड़ी साहित्यिक चुनौती है।

नागर जी आगे कहा कि आज के हिन्दी लेखक समाज की उथल-पुथल से बिल्कुल विमुख हैं। वे आज भी वाल्मीकि युग मे जी रहे हैं। हिन्दी का लेखक आज के युग में डरा है। चुनौतियों से डर रहा है, पर उपलब्धि है कि हिन्दी लेखक का जनतांत्रिकीकरण हो रहा है। महिलाएं, दलित व आदिवासी लेखक पहले से अधिक नज़र आते हैं, यह हिन्दी लेखन की उपलब्धि है।

डॉ माधव हाड़ा ने अपने वक्तव्य मे कहा कि सत्ता को मनुष्य के जीवन में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हाड़ा के अनुसार नंद बाबू गंभीर विचारपरक लेखक थे। उन्हें कविता पर भरोसा था। नन्द बाबू के मन में कविता को लेकर कोई द्वन्द्व नहीं था।

प्रो. दिव्याप्रभा नागर ने मौजूदा दौर की साहित्यिक पीड़ा और भटकाव के प्रति अपनी चिंता व्यक्त की। ●

उदयपुर से अरुण चतुर्वेदी की रिपोर्ट

विगत 23 वर्षों से देशहित में समाज-निर्माण के संकल्प के साथ

न हम डरते है न डराते हैं
हम देशप्रेम की भावना जगाते हैं

अगर आप में है जोश और
देश से प्यार

तो आइए दिल्ली से प्रकाशित
राष्ट्रीय पाक्षिक पत्रिका
दूसरा मत
के साथ

अगर शिक्षक, प्रोफेसर, इंजीनियर और डॉक्टर बनते हो तो हमेशा एक ही काम करोगे लेकिन पत्रकार बनते हो तो दुनिया समझने को मिलेगी, दुनिया समझाने को मिलेगी। दुनिया को पढ़ने का मौका मिलेगा, दुनिया को पढ़ाने का मौका मिलेगा

हम आपके हाथ में देते हैं क़लम
समाज-निर्माण की ताक़त के साथ।

योग्यता
खबरों की समझ
और देश के साथ
सच्ची प्रेम-भावना

सोचो, समझो और दूसरा मत से जुड़ो

संपर्क : +91-9643709089

बुद्ध पूर्णिमा
की
हार्दिक
शुभकामनाएं
47
YEARS OF
EXCELLENCE
!! RADHA SOAMI JI !!
Kasturi Jewellers®
SINCE 1978
100% HALLMARK JEWELLERY SHOWROOM
#GOLD #DIAMOND JEWELLERY #SOLITAIRES
100% Lifetime Maintenance Free
100% Buy Back Diamond Jewellery
100% Certified Diamond Jewellery
Shop No. 15, 16, 17, 18, SDM Market, Mangal Bazar Road, Uttam Nagar, New Delhi-110 059
Shop No. 54-55, Main Pankha Road, Opp. Sagar Pur Police Station, New Delhi-110 046
Kasturi Lal Ph. 98186 09444 | Manish (Monu) Ph. 98186 11313

दूसरा मत का साहित्य के प्रति बेजोड़ समर्पण

दूसरा मत साहित्य के प्रति अपनी आस्थावान ऊर्जा को नित्य नूतन सामर्थ्य प्रदान करता रहता है। इसने साहित्य के विभिन्न विधाओं के प्रति अपनी समग्रता और समर्थता समय-समय पर दिखाई है। 2025 का साहित्य-विशेषांक अपने आप में एक बेहतरीन उदाहरण के तौर पर सामने है। घोषणा के अनुरूप इसका ग़ज़ल विशेशांक भी मई प्रथम, 2025 के अंक में ही परिपूर्ण रूप से आ रहा है।

वास्तव में साहित्य समाज का दर्पण होता है। यही वजह है कि जब-जब राजनीति लड़खड़ाती रही, अपने पूर्वज साहित्यकारों ने उस लड़खड़ाती हुई राजनीति को क़ायदे से संभाला है। उसे दिशा और दशा देनी की अविस्मरणीय एवं अनुकरणीय भूमिका निभाई। लेकिन इधर साहित्य ख़ुद लड़खड़ाता हुआ नज़र आ रहा है। और राजनीति तो सियासत की सनक में कीचड़ की बदबू से गमक रही है। सियासत की इस सड़ांध से तब तक निज़ात नहीं मिल सकती, जब तक साहित्य अपने पूर्वजों की तरह लड़खड़ाती हुई राजनीति को सहारा देकर थामने की अपने अंदर क़ूवत न पैदा कर ले। और ख़ुद को ख़ुद से संभालने की अपने अंदर ताब न पैदा कर ले। सियासत को संभालने के लिए कॉरपोरेट भी हैं। राजघराने भी हैं। और समाज भी है। लेकिन साहित्य को ऑक्सीजन देने वाला कोई नहीं। यही वजह है कि साहित्य के वेंटीलेटर पर जाने के बाद समाज को भी सहारा देने वाला और उसे संवारने वाला कोई नहीं है। इसलिए साहित्य को वेंटीलेटर से अब बाहर निकलना होगा। उसे अपनी गरिमा को बहाल करना होगा। और सियासत की चाकरी छोड़कर उससे कुछ मांगने और याचना करने की बजाय उसे एक दृष्टिकोण देना होगा। तभी यह देश विश्वगुरु बन सकता है। साहित्यकारों को ठंडे दिमाग़ से अपने गिरेबान में झांकना होगा। उन्हें सत्ता की मलाई से गुरेज करना होगा। बहरहाल इस परिस्थिति को बहाल हमसब मिलकर करें। और साहित्य में दिन प्रतिदिन एक ऐसा निखार पैदा करें, ताकि समाज को एक नई सोच और एक नई दिशा मिल सके। दूसरा मत ने साहित्य को परिपूर्णता देने के लिए आठ पेज का अतिरिक्त इज़ाफ़ा किया है। अब दूसरा मत 72 पेज से 80 पेज का हो गया है। आपके लिए एक खुला प्लेटफॉर्म बनकर सामने है। दूसरा मत ने एक प्रण लिया है- साहित्यकारों को पारिश्रमिक देने का। यह सिलसिला चलता रहे, आप भी दुआ करें। इस वर्ष की स्वतंत्रता दिवस से यानी अगस्त सेकेंड, 2025 के अंक से से दूसरा मत में प्रकाशित साहित्य के लिए एक मानदेय तय किया गया है।